Naveen Shodh Sansar

(An International Refereed/Peer Review Journal)

RNI No. :- MPHIN/2013/60638
ISSN NO. :- 2320 – 8767
E- ISSN NO. :- 2394 - 3793
Impact Factor – 5.610

Add:- 795,Shayam Bhawan, Vikas Nagar Extension 14/2 ,Neemuch (M.P) - 458441
Mob:- 09617239102.Email id :- nssresearchjournal@gmail.com Website :- www.nssresearchjournal.com

TO Whom It May Concern

It is certified that **Dr. Neha Kalyani, Assistant Professor (Hindi) G.S. College of Commerce, Nagpur (Maharashtra) INDIA.** We are glad to inform that **Dr. Neha Kalyani** published her research paper in Naveen Shodh Sansar (an international multidisciplinary refereed/peer review journal) in Jan. To March 2020 E-journal, Vol. I, Issue XXIX on page number 193 with title – "I MgR; eadgkuh dk I ekt"WL=".

Date: - 20/April/2020

Editor

Ashish Narayan Sharma

Ashish Narayan Sharma

January to March 2020,
E-Journal
Volume I, Issue XXIX

RNI No. – MPHIN/2013/60638
ISSN 2320-8767, E-ISSN 2394-3793
Impact Factor - 5.610 (2018)

Naveen Shodh Sansar

(An International Refereed/ Peer Review Research Journal)

नवीन शोध संसार

Editor - Ashish Narayan Sharma

Office Add. "Shree Shyam Bhawan", 795, Vikas Nagar Extension 14/2, **NEEMUCH** (M.P.) 458441, (INDIA)
Mob. 09617239102, **Email** : nssresearchjournal@gmail.com, **Website** www.nssresearchjournal.com

Naveen Shodh Sansar (An International Refereed/ Peer Review Research Journal) ISSN 2320-8767, E- ISSN 2394-3793, Impact Factor - 5.610 (2018) Jan. to March 2020, E-Journal, Vol. I, Issue XXIX

साहित्य में कहानी का समाजशास्त्र

डॉ. नेहा कल्याणी*

शोध सारांश – साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है। जीवन विविध विचारों और भावों से संकुल होता है; विचारों का सम्बन्ध मस्तिष्क से और भावों का हृदय से होता है। दोनों के सन्तुलित समन्वय से ही जीवन का सुचारू रूप से परिचालन होता है। मस्तिष्क विचार एवं चिन्तन–मनन के द्वारा जीवन की ऐहिक तथा पारलौकिक समस्याओं को सुलझाता हैं तथा भौतिक और आध्यात्मिक उपलब्धियों द्वारा जीवन की ऐहिक और आध्यात्मिक उपलब्धियों द्वारा जीवन को सुख समृद्धि से पूर्ण करके सुगम बनाने का प्रयत्न करता है।

कहानी के समाजशास्त्रीय आधारों का निरूपण करते हुए डॉ. सुशील कुमार फुल्ल ने ठीक ही लिखा है कि 'कहानी का मूलाधार पात्र होते है। किसी भी कहानी में आप क्षणभर के लिए पात्रों को निष्कासित कर दें, सारी कहानी भरभराकर ढह जायेगी।'

कहानीकार समाज में अपेक्षाकृत अधिक गहराई से जुड़ा होता है। उसकी संवेदना, परिस्थितियों की पकड़ तथा लेखनीय दृष्टि में यदि संतुलित तालमेल हो जाता है तो रचना सफल हो जाती है। यह हरगिज आवश्यक नहीं कि वह कहानी में समाज का पथ–प्रदर्शन करे। कहानी का स्वर तेजहीन हो गया। इससे उबताये लेखकों के लिए,1976 में पालमपुर से सहज कहानी का उद्घोष हुआ। इसके माध्यम से पाठकों एवं समीक्षकों का ध्यान पुन: कहानी की सहजात्मक कलात्मकता की ओर आकर्षित करना अभिप्रेत था। इसी क्रम में समकालीन कहानी एवं आंचलिक कहानी भी महत्वपूर्ण है।
कुंजी शब्द – साहित्य, कहानी, समाज, सार्थकता, समीक्षा आदि।

प्रस्तावना – कलात्मक सार्थक साहित्य सृजन दीपक के समान स्वत: आलोकित होता है। उसमें प्रभावोत्पादकता स्वत: अन्तर्निहित होती है। अत: किसी भी रचना को समीक्षा के बाह्य प्रकाश की विशेष आवश्यकता नहीं रहती तथापि समीक्षा का संस्पर्श सृजन की दीप्ति को उसी प्रकार सवंर्द्धित करता है, जिस प्रकार शीशे की चिमनी दीपक के प्रकाश को अधिक धवल और दीप्त बना देती है। समीक्षा का महत्व इस दृष्टि से भी है कि वह रचनाकार को उसके सृजन के गुण–दोषों का साक्षात्कार कराकर उसके सृजन की दिशा को और भी अधिक निर्दोष एवं उपादेय बनाने की सम्भावनाएँ प्रस्तुत करती है। शर्त यह है कि समीक्षा निष्पक्ष–निर्भ्रान्त और तथ्यपरक हो। समीक्षा की शोधपरक दृष्टि असीमित और उपेक्षित सृजन को समाज और समीक्षकों के समक्ष उपस्थित करती है। साहित्य और समाज की परस्परावलम्बिता अनादिकाल से निरन्तर चली आ रही है। किसी भी रचना का पाठक से आत्मिक सम्बन्ध उस रचना का समाज के साथ सकारात्मक सम्बन्ध बनाकर उसे विश्वसनीयता और स्थायित्व प्रदान करता है। कोई भी रचना समाज और पाठक से जुड़कर तत्कालीन समय का यथार्थ दस्तावेज बनकर लोक एवं काल के लिए अनुकरणीय व स्मरणीय बन जाती हैं।

काव्यशास्त्र के रचयिता आचार्य मम्मट ने लिखा है कि–

'काव्यं यशसेऽर्थकरे, व्यवहारविदे, शिवेतररक्षतये।
सद्य परनिर्वृतये कान्ता सम्मितयोपदेश युजे।'

अर्थात उपर्युक्त वर्णित छ: प्रयोजन यश, धन, व्यवहार कुशलता, अमंगल से रक्षा, आनन्द व कान्ता के समान मधुर उपदेश जीवन के सर्वमान्य उपयोगी व श्रेयस प्रयोजनों की सिद्धियों के लिए ही साहित्य है। विश्व की समस्त ज्ञात सभ्यताओ, संस्कृतियों का प्रधान उद्देश्य ही जीवन को श्रेष्ठ व उदात्त व आनन्दमय बनाना रहा है। मनुष्य भौतिक सुखों, मनन–चिन्तन सोच व साहचर्य के साथ ही सत्य, सौन्दर्य, शिव की आकांक्षा में निरन्तर कर्म सलंग्न है। साहित्य भौतिक सुखो, दार्शनिक चिन्तनों में सामजंस्य स्थापित करके उसे आनन्द की ओर अग्रगामी बनाता है। साहित्य जीवन के सत्य को आदर्श की चासनी में लपेटकर सहृदय पाठक के समक्ष रखती है जिससे समाज का उन्नयन होता है।

साहित्य जीवन की अभिव्यक्ति है। जीवन विविध विचारों और भावों से संकुल होता है। विचारों का सम्बन्ध मस्तिष्क से और भावों का हृदय से होता है। दोनों के सन्तुलित समन्वय से ही जीवन का सुचारू रूप से परिचालन होता है। मस्तिष्क विचार एवं चिन्तन–मनन के द्वारा जीवन की ऐहिक तथा पारलौकिक समस्याओं को सुलझाता हैं तथा भौतिक और आध्यात्मिक उपलब्धियों द्वारा जीवन की ऐहिक और आध्यात्मिक उपलब्धियों द्वारा जीवन को सुख समृद्धि से पूर्ण करके सुगम बनाने का प्रयत्न करता है। हृदय भावना और अनुभूति के द्वारा मानव जीवन में रस उत्पन्न कर जीवन के प्रति आस्था जगाता है। इस प्रकार जीवन की पूर्णता को अभिव्यक्त करने वाला सम्पूर्ण कृतित्व साहित्य ही है। किन्तु हिन्दी में मस्तिष्क और हृदय की समग्र अभिव्यक्ति को वाङ्मय शब्द द्वारा अभिहित किया गया है तथा मस्तिष्क प्रसूत अभिव्यक्ति को विज्ञान और हृदय से प्रसूत अभिव्यक्ति को साहित्य की संज्ञा दी जाती है।

वर्तमान में साहित्य के अध्ययन और मूल्यांकन के क्षेत्र में समाजशास्त्र की भूमिका निरन्तर बढ़ रही है। साहित्य और समाज दोनों के मध्य गहरा सम्बन्ध है। साहित्य के बिना समाज अस्तित्वहीन तो समाज के बिना साहित्य आधारहीन हो जाता है।साहित्य में सामाजिक अभिव्यक्ति की खोज तथा दूसरे स्तर पी साहित्य समाज की प्रेरक शक्तियों को जागृत एवं उद्बुद्ध करता है। समाज के मूल्यों, मान्यताओं को शब्दबद्ध करके उसे वाणी देना, उसे समरसता प्रदान करना, लोकमंगल की भावनाओं से आपूरित कर देने का कार्य सर्जक की रचना –प्रक्रिया द्वारा ही सम्भव हो जाता है।

*सहायक व्याख्याता, गो.से. अर्थ–वाणिज्य महाविद्यालय, नागपूर (महा.) भारत

प्रसाद कृत ग्राम, चन्द्रधर शर्मा गुलेरी कृत उसने कहा था एवं सुखमय जीवन आदि प्रारम्भिक कहानियों में प्रेम, करूणा, विनोद, विस्मय व कल्पना का प्रयोग कर कहानीकारों ने व्यक्ति व समाज के सम्बन्धों को रेखांकित किया। आदर्श, उत्सर्ग व समर्पण की ये कहानियां सामाजिक सरोकारों व परिष्कृत चैतन्य की कहानियां है। कहानी में समसामयिक समाज उभरता है। उसका हर्ष-विषाद, आशा- आकांक्षा, स्थापित होती है।

स्वतन्त्रता के बाद समाज में आये ऐतिहासिक , राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक व वैज्ञानिक बदलावों से कहानी अछूती नहीं थी। समाज को वाणी देने की छटपटाहट में साहित्यकारों ने पुराने प्रतिमानों को, मानदण्डों को अस्वीकार करने का प्रयास किया। प्रारम्भ में वह कुछ प्रगति व मनोविश्लेषण में स्वयं को सान्त्वना देने में लगा पर जल्दी ही वह नये प्रयोगों, नये कथ्यों, नये मुहावरों को गढ़ने में संलग्न हो गया।

कहानी नाटकीय शैली की लघु संरचना होती है। एक बिन्दू को केन्द्र में रखकर कथाकार उसे विस्तार देता है। एक सामान्य घटना, एक क्षण, एक संवेदना, एक अनुभव कहानी में विस्तार पाकर सार्वभौम बनता एक मनोभाव को उबार कर उसे सहज, संवेद्य व सम्प्रेषणीय बनाती है।

प्रारम्भिक चरण की कहानी में कल्पना, आदर्श, ऐतिहासिकता, सहजता के साथ-साथ समाज की सुधारवादी वृत्ति कहीं न कहीं जरूर उभरती रही है। तत्कालीन समाज, राजनीति से प्रेरणा ग्रहण कर प्रेमचन्द व अन्य कथाकारों ने आदर्शोन्मुख यथार्थवादी कहानियों की रचना की।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात भारत के सामाजिक जीवन में एक परिवर्तन दिखा। पुरानी मान्यतायें ध्वस्त हो रही थी। कहानियों में प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या, द्वेष, व्यथित चेतना आदि मनोभावों से समाज का वीभत्स रूप उभरा। अब कहानी में जीवन्त मनुष्य की दैनिक जिन्दगी के सरोकारों की खोटी व निखलिस तस्वीर रचने का साहस किया गया। वे नयी जमीन , नयी ताजगी, नयी भाषा, नये तेवर, नये मुहावरों को लोकमानस में जोड़कर रचने का उपक्रम कर रहे थे।

वर्तमान युग में जब वैश्वीकरण की आँधी बह रही है और पूरी दुनिया को एक रीति -नीति एवं संस्कृति के तहत पाश्चात्य संस्कृति हावी होने का प्रयास कर रही है, तो कहानी के समाजशास्त्रीय विश्लेषण की आवश्यकता बढ़ जाती है। कहानी के सृजन में समाज की प्रेरक व प्रधान भूमिका होती है तो उसके मूल्यांकन एवं विश्लेषण में समाजशास्त्रीय प्रतिमानों की। यों भी साहित्य रचना की प्रक्रिया में समाज, लेखक और साहित्य परस्पर एक दूसरे इस तरह प्रभावित करते है कि इनमें प्रत्येक क्रमशः परिवर्तित व परिवर्धित होता रहता है- समाज से लेखक, लेखक से समाज और साहित्य से पुनः समाज। अतः कहानी के विश्लेषण में इस तथ्य को ध्यान रखना होगा कि कोई कहानी सामाजिक स्थितियों के प्रति सामाजिकता की किस सीमा तक सचेत, जागृत और क्रियाशील करती है?

कहानी साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा है; जो अपनी सक्षिप्तता और रोचकता के कारण बेहद लोकप्रिय है। कहानी में जीवन का एक महत्वपूर्ण उत्स विकसित होता है अतः उसके समाज-शास्त्रीय अनुशीलन की अपार सम्भावनाएँ है। कहानी के समाजशास्त्रीय आधारों का निरूपण करते हुए डॉ. सुशील कुमार फुल्ल ने ठीक ही लिखा है कि 'कहानी का मूलाधार पात्र होते है। किसी भी कहानी में आप क्षणभर के लिए पात्रों को निष्कासित कर दें, सारी कहानी भरभराकर ढह जायेगी।'

कथा का सीधा सम्बन्ध समाज से है। कहानी से पात्र नदारद है, तो समाज नदारद है। पात्र समाज का अंग है। 'पात्रों की मानसिकता ही समाज की मानसिकता है। पात्रों के अन्तर्मन की विलष्टता समाज के अन्तर्द्वन्द को चित्रित करती है। वास्तव में कहानी लेखक के अनुभव, उनकी मानसिकता को व्यक्त करने का साधन मात्र है। समाज की विविधता,इसकी विसंगतियाँ, तथा महत्वांकांक्षाएँ संवेदना को विविध आयाम प्रस्तुत करती हैं। कथा साहित्य की विषय वस्तु से संबंधित कुछ तत्वों और उनसे प्रतिबिंबित सामाजिक यथार्थ के बीच जो सम्बन्ध है, ये विश्लेषण किसी ना किसी रूप में उसी से जुड़े है। ये तत्व सामाजिक यथार्थ को या तो बिना किसी क्रम विषयार्थ के व्यक्त करती है या फिर स्पष्ट या पारदर्शी क्रम विषयार्थ के द्वारा।' वैसे तो समग्र साहित्य का आधार समाज है, परन्तु कहानी में जिस शिद्दत से समाज को उद्घाटित किया है, वह अतुलनीय है। ऋग्वेद के उषा सूक्त से लेकर आज तक रचित कहानियों में सामाजिकता के जो विविध आयाम मिलते है, वे ही कहानी की गरिमा एवं निरन्तर लोकप्रियता के सम्बल है। 'मानवीय व्यवहार की जटिलता एवं विविधता के उद्भव एवं विकास की यात्रा कथा का ही दूसरा नाम समाजशास्त्र है।' समाजशास्त्र की इस परिभाषा में कहानी का उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है। मानवीय व्यवहार की अन्तर्हित मानसिकता का उद्घाटन , रेखांकन एवं चित्रांकन ही कहानी है।

उपसंहार – साहित्य में समाजशास्त्रीय सोच अति प्राचीन होते हुए भी विवेचन के कारगर हथियार के रूप में नये तेवर तथा नये अन्दाज के साथ उभरी है। इस पद्धति में समाजशास्त्र एक प्रतिमान के रूप में कार्य करता है। प्रसिद्ध समीक्षक डॉ. बच्चन सिंह का कथन है कि 'लेखक साहित्य का स्रष्टा है , साहित्य में उसके व्यक्तित्व का प्रतिफलन होता है। अतः साहित्य को समझने के लिए लेखक के व्यक्तित्व को रूपायित करने वाले तत्वों का विश्लेषण जरूरी है।'

सुप्रसिद्ध समीक्षक इन्द्रनाथ मदान का कहना है कि मुंशी प्रेमचंद संभवतः साहित्यकार को मसीहा मानते थे। तभी तो वे कहते है कि- 'साहित्यकार का लक्ष्य केवल महफिल सजाना और मनोरंजन का सामान जुटाना नहीं है..... वह देशभक्ति और राजनीति के पीछे चलने वाली सच्चाई भी नहीं है बल्कि उसके आगे मशाल दिखती हुई चलने वाली सच्चाई है।'

कहानी सर्वाधिक शुद्ध कलात्मक रूप है। यह सम्पूर्ण कलात्मक सृजन के अंतिम अर्थ को मनोअवस्था के रूप में, सृजन प्रक्रिया कथ्य एवं वास्तविक भाव के रूप में जिन कहानियों से हमें जीवन की सच्चाई दिखाई देती हैं तथा जीवन जीने में मदद मिलती हैं निश्चय ही वे यथार्थवादी कहानी है। इसके विपरीत रचनात्मक श्रेष्ठता से युक्त होने पर भी कोई रचना जीवन विरोधी होने पर अनपेक्षित हो जाती है। ऐसी कहानी में मानव संसक्ति की खोज बेमानी है। किसी कहानी में वैयक्तिकता का वर्णन तो अपेक्षित है, पर वो सामाजिकता की कीमत पर नहीं होना चाहिये।

नामवर सिंह ने नयी कहानी की तारीफ करते हुए भी एक अभाव की ओर ध्यान दिलाया है कि उसका सामाजिक परिप्रेक्ष्य नहीं था। समकालीन कहानियों में सामाजिकता थोपी हुई नहीं दिखाई देती बल्कि वह उन कहानियों के एक अंग के रूप में परिलक्षित होती है तथा इन जीवन प्रसंगों व चित्रणों के माध्यम से यह कहानी स्वाभाविक रूप से विकसित दिखाई देती है।

कहानीकार समाज में अपेक्षाकृत अधिक गहराई से जुड़ा होता है। उसकी संवेदना,परिस्थितियों की पकड़ तथा लेखनीय दृष्टि में यदि संतुलित तालमेल हो जाता है तो रचना सफल हो जाती है। यह हरगिज आवश्यक नहीं कि वह कहानी में समाज का पथ-प्रदर्शन करे। पुरानी कहानी और आज की कहानी में यही अन्तर है कि धर्मवादी कहानी में लेखक की अनुपस्थिति ही कहानी की सशक्तता का प्रमाण होती है। कहानीकार सदैव ही समाज के लिए

मशालची का कार्य करे ये जरूरी नहीं अपितु गद्य में रचित कथा तन्तुओं को कलात्मकता के साथ प्रस्तुत करना ही उसका ध्येय हैं।

विषय वस्तु एवं शैली की दृष्टि से कहानी सर्वाधिक व्यापक एवं स्वच्छन्द विधा है। परिणामत: समय –समय पर अनेक समीक्षकों एवं कहानीकारों ने अपनी बौद्धिक क्षमता के आधार पर कहानी को परिभाषा के घेरे में बांधने का प्रयास किया, किन्तु क्षणिक चकाचौंध के बाद सभी मत–मतान्तर धुंधले पड जाते है। नयी कहानी का आन्दोलन एवं उसके कहानीकार कमलेश्वर, मोहन राकेश एवं राजेन्द्र यादव इसी क्रम में अकहानी, सचेतन कहानी और उसके कहानीकार डॉ. महीप सिंह, तत्पश्चात् सारिका पत्रिका के सम्पादक कमलेश्वर ने कहानी-जगत में व्याप्त जड़ता को तोड़ने के लिए समानान्तर कहानी का आन्दोलन छेड़ा और परिणामत: कहानी में आम आदमी की पीड़ा का चित्रण प्रधान हो गया।

कहानी में सामान्य वर्ग का चित्रण गलत नहीं है, परन्तु समाज की समग्रता में से एक पक्ष को चुनकर उस पर अत्यधिक ध्यान देने से कहानी के स्वरूप में विकार आया, शैली गौण हो गयी। कहानी का स्वर तेजहीन हो गया। इससे उबताये लेखकों के लिए 1976 में पालमपुर से सहज कहानी का उद्घोष हुआ। इसके माध्यम से पाठकों एवं समीक्षकों का ध्यान पुन: कहानी की सहजात्मक कलात्मकता की ओर आकर्षित करना अभिप्रेत था। इसी क्रम में समकालीन कहानी , सकहानी, अकहानी , नयी कहानी एवं आंचलिक कहानी भी महत्वपूर्ण है।

स्वतन्त्रता के बाद हिन्दी कहानी में समाज की घटना को व्यक्तिगत बनाने की कला में संश्लेष शिल्प का नया प्रयोग हुआ है। संश्लेष शिल्प में दोहरा कथानक होता है जिसमें एक पुराना और एक नया और यह दुहरा शिल्प दो युगों की समानान्तर तुलना और अन्तर्विरोध को प्रस्तुत करता जाता है। नयी और पुरानी कहानी के अन्तर और दूरियों को उजागर करता है। परिणामत: कहानी का मूलाधार एवं प्रेरणा स्रोत समाज की संश्लिष्टता में निहित है, जिसे कहानीकार गहरे पैठकर संवेदनापरक अंशों को उद्घाटित करता है।

जीवन की व्यापक दृष्टि व सघन मानवीय संवेदना से रची जाती हुई नयी कहानी में व्यक्ति के अंह, सामाजिक संघर्ष व विविध स्तरीय अन्तर्विरोधों को व्यक्त करने की पर्याप्त क्षमता हमें दिखायी देती है। यथार्थ परिवेश और भोगे हुए यथार्थ का चित्रण उसे अतिरिक्त बनाता है। यथार्थ परिवेश के प्रति सजगता तथा अनुभूति की गहन प्रगाढ़ता ने नयी कहानी को जीवन व समाज की विषम परिस्थितियों से जोडकर उसमें उन स्थितियों को शब्दों के माध्यम से मुखर किया।

संदर्भ ग्रंथ सूची :-

1. 'हिन्दी कहानी परम्परा और प्रगति – हरदयाल
2. समकालीन कहानी का समाजशास्त्र – देवेन्द्र चौबे, नयी दिल्ली, प्रकाशन संस्थान, 2001
3. नयी कहानी का समाजशास्त्र – डॉ. ऋचा सिंह, विजय प्रकाशन मन्दिर, वाराणसी ,
4. भाषा का समाजशास्त्र– राजेन्द्र प्रसाद सिंह
5. हिन्दी कहानी : सरंचना और संवेदना– साधना शाह
6. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका – मैनेजर पाण्डे, राजकमल प्रकाशन
7. समकालीन हिन्दी कहानी –यथार्थ के विविध आयाम– डॉ. ज्ञानवती अरोड़ा

20/4-20

EDUINDEX

PUBLICATION CERTIFICATE

This publication certificate has been issued to

Neha kalyani

For publication of research paper titled

vashivekaran upnyas or vichardhara

Published in *Unmilan with ISSN 0974-0053*

Vol. *23* **Issue** *4* **Month** *April* **Year** *2020*

Impact Factor *5.70*

The journal is indexed, peer reviewed and listed in UGC Care.

NK Balasubramanian

Editor

Note: This eCertificate is valid with published papers and the paper must be available online at the website under the network of EDUIndex. For cross check you can contact at editor@eduindex.org

Unmilan
(UGC Care Journal)

ISSN 0974-0053
Vol-23-Issue-04
April-2020

वैश्वीकरण, उपन्यास और विचारधारा

डॉ. नेहा कल्याणी
सहायक व्याख्याता
गो. से. अर्थ–वाणिज्य महाविद्यालय, नागपूर
महाराष्ट्र

सारां"ा :– उपन्यास का एक रि"ता कथा कहने की प्राचीन मौखिक परम्पराओं से है तो दूसरा रि"ता उपनिवे"ावाद के समक्ष हक की आवाज से है। प्रेस के अविष्कार ने कथाओं की महान मौखिक परम्पराओं को **'लिखित मौखिकता'** का रूप दिया। परिणामतः उपन्यास का सम्बन्ध राष्ट्र के जन्म से नहीं है, अपितु कुछ कहने सुनने की परम्परा से है। यह ऐसा मानवीय रूपक है, जो हमे"ा सत्ता और प्रचलित ज्ञान का विखंडन करता आया है, क्योंकि इसके बिना कुछ नया, चुनौतीपूर्ण और मूल्यवान देना सम्भव नहीं है। उपन्यास में आये हुए परिवर्तन को यथार्थवाद, आधुनिकतावाद, नयी आलोचना या उत्ता औपनिवे"िक सिद्धान्तों के चौखटे में रखकर नहीं समझा जा सकता। फिर भी आज के उपन्यास को एक समावे"ी प्रगति"ील परम्परा के भीतर रखकर देखना होगा, विच्छिन्नता में नहीं।

वै"वीकरणः– उपन्यास का लोकेल और सामुदायिक यथार्थ की ओर झुकाव, सचेतन ढंग से मौखिक परम्परा का आश्रय, पुराजातीयता, जादुई यथार्थवाद, इतिहास से कथा–क्रीडा और ऐसी कई नयी अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्तियाँ सामने आयी, जिनसे भारतीय उपन्यास भी अछूते नहीं रह पाये। वर्तमान में समाज में 'तर्क', 'जबाबदेही', 'मूल्यबोध' जैसे शब्द धूमिल होते जा रहे हैं, किन्तु उपन्यास की धरती पर वे अपनी पूर्ण सार्थकता के साथ मौजुद है। अब उपन्यास लेखक के रूप में प्रेमचन्द जैसे दर्द में जीते किसी लेखक की तस्वीर नहीं उभरती।

कुंजी शब्द (key words) :– वै"वीकरण, यथार्थ, आधुनिकतावाद, उपन्यास, विचारधारा।

शोध–प्रपत्र

उपन्यास का जन्म :– उपन्यास को **'आधुनिक युग में मध्यवर्ग का महाकाव्य'** कह कर उसे एक सार्वभौम अवधारणा का जामा पहनाया गया और कभी उपनिवे"ित दे"ों के उपन्यास को **'राष्ट्रीय रूपक'** कहा गया। मानो प"िचम के उपन्यास अन्तरराष्ट्रीय रूपक हों या उपन्यास से पहले भारत ना हों। दरअसल उपन्यास उन प्राचीन लोककथाओं का नया अवतार है, जो सैकडों साल से कल्पित कहानी या झूठ के "िल्प में जीवन की सच्चाइयों, स्मृतियों और आ"ाओं को बचाकर रखती आयी है। उपन्यास का एक रि"ता कथा कहने की प्राचीन मौखिक परम्पराओं से है तो दूसरा रि"ता उपनिवे"ावाद के समक्ष हक की आवाज से है। प्रेस के अविष्कार ने कथाओं की महान मौखिक परम्पराओं को **'लिखित मौखिकता'** का रूप दिया। परिणामतः उपन्यास का सम्बन्ध राष्ट्र के जन्म से नहीं है, अपितु कुछ कहने सुनने की परम्परा से है। यह ऐसा मानवीय रूपक है, जो हमे"ा सत्ता और प्रचलित ज्ञान का विखंडन करता आया है, क्योंकि इसके बिना कुछ नया, चुनौतीपूर्ण और मूल्यवान देना सम्भव नहीं है। उपन्यास में आये हुए परिवर्तन को यथार्थवाद, आधुनिकतावाद, नयी आलोचना या उत्ता औपनिवे"िक सिद्धान्तों के चौखटे में रखकर नहीं समझा जा सकता। फिर भी आज के उपन्यास को एक समावे"ी प्रगति"ील परम्परा के भीतर रखकर देखना होगा, विच्छिन्नता में नहीं।

Copyright@authors

ISSN 0974-0053
Vol-23-Issue-04
April-2020

की परम्परा से है। यह ऐसा मानवीय रूपक है, जो हमे"ा सत्ता और प्रचलित ज्ञान का विखंडन करता आया है, क्योंकि इसके बिना कुछ नया, चुनौतीपूर्ण और मूल्यवान पैना सम्भव नहीं है। उपन्यास सदैव एक दा"ानिक विद्रोह है, प्रतिवाद है और उनकी आवाज है जो हा"िये पर है, भेदभाव के "िकार है, बहिष्कृत हैं।

उपन्यास का स्वरूपः– कभी उपन्यास की मृत्यु की घोषणा की गई थी किन्तु आज यह वि"व की चर्चित विधा है। मनोरंजन उद्योगों द्वारा साहित्य के सामाजिक विस्थापन के दौर में यदि कोई साहित्य आज भी ज्यादा पढा जा रहा है तो वह उपन्यास है। यह उपन्यास का युग है। इसकी एक वजह यह है कि यह निजीपन या गिने–चुने सन्दर्भों तक सीमित नहीं है। उपन्यास पढकर पाठक स्वयं का पुर्नलब्ध करता है, आनन्दित होता है । वास्तव में लेखक का उपन्यास लिखना प्रत्यक्ष वास्तव का सृजनात्मक अपरिचितकरण हैं, जो हमे"ा चुनौतीपूर्ण होता है। उसी तरह पाठक का उपन्यास पढना अन्तःमूर्तिभंजन है , जो आत्मऔचित्यकरण से एक भिन्न मामला है। वास्तव में उपन्यास पढना समय काटना नही अपितु समय को जानना है, जीना है और इसे बदलने के लिए कुछ नया सोचना है।

गौर करने की चीज है कि हिन्दी उपन्यास में स्थान, राष्ट्र, और वि"वदृष्टि का त्रिभुज रहा है। उपन्यास मे आये हुए परिवर्तन को यथार्थवाद, आधुनिकतावाद, नयी आलोचना या उत्ता औपनिवे"िक सिद्धान्तों के चौखटे में रखकर नहीं समझा जा सकता। फिर भी आज के उपन्यास को एक समावे"ी प्रगति"ील परम्परा के भीतर रखकर देखना होगा, विच्छिन्नता में नहीं। उपन्यास विस्थापित इतिहास, राष्ट्रीय टुकडों की सबसे सबल मानवीय आवाज होने की वजह से कुछ सार्थक कहने में आज सभी विधाओं से आगे है। फिर भी उपन्यास को महज समस्यामूलक कृति, विम"ा या आवाज कहना काफी नहीं है। वह एक सतत "िल्पगत अन्वेषण है। यह क्रीडामय होने के साथ ही एक चुनौतीपूर्ण विधा भी है। वास्तव में उपन्यास सांस्कृतिक पाठ होते हैं, पर वे सामाजिक –ऐतिहासिक सन्दर्भों में रचे जाकर एक बिन्दु पर जीवन के व्यापक दुख–सुख, हसीं–खु"ी, उलझन–संकल्प, और भटकावों –अन्वेषणों की मानवीय कथा होते है, तभी वे पाठक के लिए सहज और आत्मीय हो पाते है।

वै"वीकरण :– वै"वीकरण के वर्तमान युग में दुविधा की वैसी ही स्थिति है, जैसी कभी 19 वीं सदी के अंग्रेजी राज में थीं– आधुनिकता चाहिये या स्वाधीनता। आज प्र"न उपस्थित है– विकास चाहिये या न्याय। विखण्डता आज भी वैसी ही है जैसी पहले थी, बल्कि असहिष्णुता बढी है।

वै"वीकरण के दौर में कहना न होगा कि **'राश्ट्र' और 'जनतान्त्रिक संघर्श'** के महावृतान्तों के स्थान पर सामुदायिक विमर्श पर आधारित लघु वृतान्तों ने ही ज्यादा तहलका मचाया है। 1980 के द"ाक से ही वि"व उपन्यास संसार में नयी प्रवृत्तियों का उदय शुरू हो गया था। उपन्यास का लोकेल और सामुदायिक यथार्थ की ओर झुकाव, सचेतन ढंग से मौखिक परम्परा का आश्रय, पुराजातीयता, जादुई यथार्थवाद , इतिहास से कथा–क्रीडा और ऐसी कई नयी अन्तर्राष्ट्रीय प्रवृत्तियाँ सामने आयी, जिनसे भारतीय उपन्यास भी अछूते नहीं रह पाये। वर्तमान

Copyright©authors

ISSN 0974-0053
Vol-23-Issue-04
April 2020

में समाज में 'तर्क', 'जवाबदेही', 'मूल्यबोध' जैसे शब्द धूमिल होते जा रहे हैं, किन्तु उपन्यास की धरती पर वे अपनी पूर्ण सार्थकता के साथ मौजुद है। अब उपन्यास लेखक के रूप में प्रेमचन्द जैसे दर्द में जीते किसी लेखक की तस्वीर नहीं उभरती।

प्रेमचन्द के युग में राष्ट्रवाद, रोमांटिसज्म, यथार्थवाद, आधुनिकतावाद और साठोत्तरी सर्वनिषेधवाद से प्रेरित थे। किन्तु वै"वीकरण के इस युग मे आधुनिक वैयक्तिक सचेतनता के साथ ही राष्ट्र और आधुनिक विकास के प्र"न उपन्यास विधा के सामने उपस्थित थे।

1990 के बाद से ही उपन्यास की विषयवस्तु ही नहीं बदलती, इसकी पूरी बुनावट,काफी वक्र, तीखी और पर्याप्त प्रहारात्मक हो जाती है। वै"वीकरण की मुक्त बाजार व्यवस्था से सामन्ती बर्बरता और धार्मिक मतभेद की स्थिति में बढोत्तरी हुई। वै"वीकरण के इस युग में सबसे बढी समस्या है–बढती मानवीय निरा"ा। नये जमाने में एक ओर यदि एक ओर आर्थिक विकास का प्र"न उपस्थित है तो दुसरी ओर जीवन को किसी तरह बचाये रखने की जद्दोजहद एवं बिखरते मानवीय मूल्यों को समटने का प्रयास प्रमुख रूप से उपस्थित है। वर्तमान युग में बढती आत्महत्याओं के पीछे क्या कारण है? भुखा रहना या जीवन की आव"यकताओं को जुटा न पाना आत्महत्या का कारण नहीं हो सकता, बल्कि मानसिक रूप से टुटना , हारना, विकल्प हीनता, विव"ता ही उसका कारण हो सकता है।

आज के नये तेवर के उपन्यास जिनमें 'लोकेल की बैचेनी' है, निःसन्देह समग्र भारतीय यथार्थ उपस्थित नहीं करते, पर वे भारत के वंचितों और उत्पीडितों का यथार्थ उपस्थित करते है। 'वर्तमानकालीन उपन्यासों में भले ही प्रेमचन्द के उपन्यासों की तरह भारतीय समाज का पूर्ण चित्र उपस्थित ना हो, पर इन उपन्यासों का सौन्दर्य **'गति, संघर्श और बैचेनी'** पैदा करता है, जो प्रेमचन्द चाहते थे। इन उपन्यासों में भले ही प्राचीन उपन्यासों की तरह सम्मोहन नहीं हैं किन्तु इनमें एक वि"व समाहित है, एक नये वि"व की छटपटाहट है और एक भिन्न तरह के राष्ट्र की प्रसवपीडा है। 21 वीं सदी में उपन्यास की जो प्रेरणायें है, उनमें राष्ट्र की कठोरता से जन्मा हा"िये का आक्रो"ा प्रधान हैं । नि"चय ही स्त्री की स्वतन्त्रता की गरिमा, सामाजिक भेदभाव का विरोध, वै"वीकरण और नये विकास को लेकर दुविधा, वि"व में नयी सोच को लेकर उत्सुकता, वर्तमान की विडम्बनाओं और सम्भावनाओं की अतीत में खोज जैसी चीजें भी मुख्य हैं । आज के उपन्यास हा"िये के समाज–किन्नर, दलित, स्त्री आदि की व्यथा को समाज के सामने अभिव्यक्ति देने का प्रयास करते है। आज की आभासी दुनिया में जीवन के अर्थ की खोज करने जैसा कठिन कार्य करता है उपन्यास।

भारतीय उपन्यासों की विचारधाराः– आज के लेखक यथार्थवाद की यान्त्रिकता से ही बाहर नहीं निकल आये है, आधुनिकता के सर्वसत्तावादी रूपों से ही नहीं टकराते है, वे अधबने राष्ट्र के मन में पलती शंकाओं और विद्रूपताओं को भी खुले मन से पढते है। भारतीय समाज में सामन्ती मानसिकता आज भी घनघोर रूप में है।

Copyright©authors

ISSN 0974-0053
Vol-23-Issue-04
April-2020

महावीरप्रसाद द्विवेदी के इस कथन को समझे बिना भारतीय उपन्यास को समझ पाना मु"किल है–" जिनको मनुष्य स्वभाव का ज्ञान है, जो अपने विचार मनमोहक भाषा में प्रकट कर सकते है। जो समाज का रूख एवं उसका लाभ–हानि समझकर लिख सकते हैं, वे पा"चम के तत्व निरूपण के बिना भी अच्छा उपन्यास लिख सकते है। (उपन्यास रहस्य, 1922)

भले ही श्यामा स्वप्न और चन्द्रकान्ता सन्तति से समाज के रूख का ज्ञान नहीं होता, किन्तु लाला श्रीनिवासदास कृत परीक्षा गुरू से होता है। परीक्षा गुरू को स्वयंलेखक ने **'अनुभव द्वारा उपदे"। मिलने की संसारी वार्ता'** कहा है। इसमें भारत में विदे"ी माल को रोकने, आत्मनिर्भरता, सादगी पूर्ण एवं मूल्य सम्पन्न जीवन, आलस्य व मौजमस्ती का त्याग एवं अन्धानुकरण ना करने जैसी चीजों पर बल दिया है। यह उपन्यास भले ही कच्चे ढांचे में हो पर इसकी चिन्तायें बडी है।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने उपन्यास को राष्ट्रीय कथा का दर्पण कहा , उसमें कृषक का महत्वपूर्ण स्थान है। उनकी इस इच्छा को प्रेमचन्द ने ठोस आकार दिया। उनके उपन्यासों में न चेहराविहीनता है न ही शहरी चेहरे की मिथ्या पृथकता। उनमें एक व्यापक जनजीवन है ,जहां गांव में विव"ा होरी भी मौजुद है; तो दूसरी ओर शहरी उद्योग और खन्ना है।

प्रेमचन्द ने उपन्यास की पा"चमी अवधारणा को चुनौती देते हुए अपने कथा साहित्य को राष्ट्र की रूपक कथा बनाया। यह महज राष्ट्रीय रूपककथा न थी उसमें किसानों, स्त्रियों और दलितों का राष्ट्रीय सुधारवाद में शामिल न हो पाने का दर्द मुखरता से व्यक्त हुआ था। निसन्देह उसमें एक वि"व दृष्टि थी। आधुनिकता और यथार्थवाद जैसी विचारधाराओं के दम पर अनेक उपन्यासों में जीवन के अनसुलझे रहस्यों की ओर संकेत किया गया जैसे – त्यागपत्र–जैनेन्द्र कुमार, शेखर एक जीवनी– अज्ञेय, झूठा–सच–य"ापाल, मैला आँचल– फणी"वरनाथ रेणु, आधा गाँव– राही मासूम रजा, राग–दरबारी–श्री लाल शुक्ल, अन्तिम अरण्य– निर्मल वर्मा, नौकर की कमीज– विनोद कुमार शुक्ल जैसे कुछ उपन्यास हिन्दी के मास्टरपीस कहे जा सकते है।

किन्तु बदलते समय में उपन्यास की विचारधारा में परिवर्तन हुआ है। आज चरित्र से ज्यादा विषय प्रमुख है, समस्या की प्रधानता हैं। वै"वीकरण ने समान आर्थिक नियति की ओर लगातार धकेलते हुए समाज, राजनीति, साहित्य हर जगह सांस्कृतिक अन्तर्द्वन्द्वों को उकसाया हैं।

उपसंहारः– व्ै"वीकरण के इस युग में मानवीय अस्मिता एक रणभूमि में बदल गयी है। उपभोक्तावाद और व्यक्तिवाद के दलदल में फंसे समाज का चित्रण भी वर्तमानकालीन समाज में हो रहा है ; भले ही आज के उपन्यास पूर्ण रूप से उत्कृष्ट ना हो किन्तु वे आधुनिक युग का प्रतिबिम्ब अव"य प्रस्तुत करते है। हिन्दी मे कम श्रम से सीमित अनुभव, कम सर्वेक्षण और थोडी ताकझा]क करके फटाफट उपन्यास लिखने की आदत ज्यादा रही है। परिणामतः हिन्दी

Copyright©authors

ISSN 0974-0053
Vol-23-Issue-04
April-2020

क्षेत्र का जातीय जीवन उपन्यास में ज्यादा नहीं आ पाया, उपन्यासकार टूकडों में ज्यादा फ¡स गए।

उपन्यास यथार्थ के बिना हो ही नहीं सकता, भुमण्डलीकरण के जमाने मे यथार्थ की बहुलता है, वह भी विभाजित बहुलता। उपन्यासों के विषय में प्रेमचन्द ने कहा है कि –" अभी हम झूठ को सच बनाकर दिखाना चाहते है। भविष्य में सच को झूठ बनाकर दिखाना होगा।"(कुछ विचार) वै"वीकरण ने समाज में उदारता लाने की बजाय सामन्तवाद के दानव को अधमरे से पुनः ऊर्जावान बना दिया । उपन्यास में तेजी से आये ,वंचित, विस्थापित या दबाये गए समुदायों के यथार्थवादी परिदृ"य के अंग है।

यह बात स्पष्ट है कि आधुनिकता हो या मार्क्सवाद, एकदम वैचारिक जकडन में लिखे गये उपन्यास बस आये और लुप्त हो गये। चुनौती देने वाले अनुभव के अभाव में वे सांस्कृतिक प्रवाह में ठहर नहीं सके।

सन्दर्भ ग्रन्थः–

1. उपन्यास की संरचनाः– गोपाल राय, राजकमल प्रका"ान, नयी दिल्ली, 2006
2. हिन्दी उपन्यास राष्ट्र और हा"ियाः– शंभुनाथ, वाणी प्रका"ान, नयी दिल्ली, 2016
3. हिन्दी उपन्यास : पृष्ठभूमि और परम्पराः– डॉ. बदरीदास, ग्रन्थम प्रका"ान, कानपुर
4. हिन्दी उपन्यास सिद्धान्त और समीक्षाः– डॉ. मक्खनलाल शर्मा,प्रभात प्रका"ान, नई दिल्ली
5. हिन्दी उपन्यासः उपलब्धियाँः–डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय

Copyright©authors

2014-20

EDUINDEX

PUBLICATION CERTIFICATE

This publication certificate has been issued to

Neha kalyani

For publication of research paper titled

shekher ek jivni

Published in *Nibandha Mala with ISSN 2277-2359*

Vol. *12* **Issue** *4* **Month** *April* **Year** *2020*

Impact Factor *5.10*

The journal is indexed, peer reviewed and listed in UGC Care.

SK Sharma

Editor

Note: This eCertificate is valid with published papers and the paper must be available online at the website under the network of EDUindex. For cross check you can contact at editor@eduindex.org

Nibandha Mala (Bimonthly Hindi Journal)

ISSN 2277-2359
Vol-12-Issue-03
March 2020

शेखर : एक जीवनी : अज्ञेय की अर्न्तदृष्टि

डॉ. नेहा कल्याणी
सहायक व्याख्याता
गो. ती. अर्थ–वाणिज्य महाविद्यालय, नागपूर
महाराष्ट्र
सम्पर्क – 9326972033

सारांश:– शेखर : एक जीवनी के शिशु शेखर में अंह, भय, और सेक्स जिन रूपों में विद्यमान है वह अन्त तक परिस्थितिनुसार परिवर्तित होते जाते है । उपन्यास के पात्र शेखर के पिता का बार –बार तबादला होने से उसे एक गतिशील आधुनिक परिवेश मिला था। नैतिक वर्जनाओं से जकडे भारतीय समाज में सेक्स एक रहस्य है, एक अपराध है, एक धार्मिक अनुष्ठान है, नारी उत्पीडन है, वह सहज अनुभूति नहीं है। शेखर अपने अंह और भय के स्तर पर चाहे जिन अतिवादी बिन्दुओं पर हो, सेक्स स्तर पर वह एक उदात्त स्वच्छन्दतावादी है। वह जिस शिक्षित व आधुनिक परिवार के परिवेश में था, उसमें स्त्रियों को देखकर यौनाकर्षण स्वाभाविक था और परम्परागत दबावों की वजह से जाहिर है कि वर्जना रेखा भी कठोर थी। शेखर के व्यक्तित्वों में विरूद्धों का सामंजस्य है। उसके व्यक्तित्व को "**प्रेम और बौद्धिक घृणा**" के साथ विद्रोह – ये दो तत्व आकार देते है। वास्तव में शेखर: एक जीवनी छायावाद के उच्चतर मूल्यों को समटते हुए उसका अतिक्रमण है। शेखर एक जीवनी के रचनाकाल तक अज्ञेय की वैयक्तिकता और यथार्थ में कोई बडा अन्तर्विरोध नहीं था। शेखर सोचता है ," व्यक्ति के हित और विश्व के हित में भेद नहीं होना चाहिये। "भारतीय नवजागरण और छायावाद की परम्परा में अज्ञेय पश्चिमी सभ्यता और राष्ट्रीयता, व्यक्ति और विश्व तथा अनुभूति और यथार्थ के बीच अन्त:क्रिया के पक्षधर थे। वह इस उपन्यास में एक उदार आधुनिक बुद्धिजीवी के रूप में उपस्थित होते है, जो पिछडी, सामन्ती तथा विकृत पूर्जीवादी व्यवस्था से बार–बार आघात पाकर भी यथार्थ से अपना जीवित सम्पर्क बनाये रखती है।

कुंजी शब्द:– वैयक्तिकता,शेखर, उपन्यास,अज्ञेय।

शोध–प्रपत्र

शेखर : एक जीवनी का पहला भाग 1941 में तथा दूसरा 1944 में छपा था । 1930 के दिसम्बर में अज्ञेय जेल में थे, जहाँ प्राप्त अपनी अर्न्तदृष्टि को उन्होंने शब्दबद्ध करने का प्रयास में यह उपन्यास सृजित किया। वास्तव में यह अर्न्तदृष्टि आधुनिकता की नयी लहरों से बनी थी।

उपन्यास का दूसरा खण्ड प्रकाशित होने का समय गांधीवाद और नेहरूवाद के बीच रस्साकशी का समय था, भारतीयता और पश्चिम के द्वन्द्वात्मक रिश्तों को समझने का समय था। इस उपन्यास में बुद्धिवाद और रोमांटिसिज्म से लेकर अस्तित्ववाद तक की वैचारिक हलचलें है। यदि इस उपन्यास में महात्मा गांधी के नेतृत्व में चलने वाले पहले अहिंसक सत्याग्रह से लेकर दूसरे विश्व युद्ध तक के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण काल की मानवीय संवेदना, जातीय आधुनिक पहचान की खोज और वैयक्तिक अन्तर्द्वन्द्व मिलता है।

आत्मजीवनी की शैली में लिखे गये इस उपन्यास के पात्र शेखर और अज्ञेय की किशोरावस्था की बहुत सी चीजों में समानता है। उन्होंने इसकी भूमिका में स्वीकारा है " शेखर में मेरापन कुछ अधिक है, इलियट का आदर्श मुझसे निभ नहीं सका है।" भोगने वाले व्यक्ति और सृजन करने वाले कलाकार के बीच दूरी कहीं टूट सी जाती है और कहीं पुर्नस्थापित हो जाती है। शिल्प की यह द्वन्द्वात्मकता अज्ञेय की भीतरी जद्दोजहद व्यक्त करती है,इस उपन्यास को भी खास भी बनाती है।

अज्ञेय दूसरा सप्तक के प्रकाशन के साथ ही बाहर की दुनिया से अपना सम्पर्क समेट कर मुख्यत: आधुनिकतावादी हो गए। वे आत्मविमुग्धता से युक्त आत्मान्वेषण में संलग्न हो गए। शेखर : एक जीवनी: और तारसप्तक के प्रकाशन तक अज्ञेय के सामाजिक –राजनैतिक विचार लगभग वही थे, जो शेखर के थे। शेखर : एक जीवनी: के शिशु शेखर में अंह, भय, और सेक्स जिन रूपों में विद्यमान है वह अन्त तक परिस्थितिनुसार परिवर्तित होते जाते है । उपन्यास के पात्र शेखर के पिता का बार –बार तबादला होने से उसे एक गतिशील आधुनिक परिवेश मिला था। उसमें उच्च वर्गीय सामन्ती तत्व थे और वह

Copyright©authors

ISSN 2277-2359
Vol-12-Issue-03
March- 2020

पितृसत्तात्मक प्रवृत्ति का बालक था। आधुनिकीकरण व्यक्ति में जातीय आत्मपहचान,राजनैतिक अधिकार की चेतना, वैयक्तिक दायित्वबोध और स्वचेतना पैदा करता है शेखर का लेटरबॉक्स की कँचाई पर खड़े रहकर संसार की क्षुद्रता पर हँसना, ऊपर से कूदकर ढाकियों का पैर कुचल देना, स्वयं को महान समझना ऐसा व्यक्तित्व वास्तव में मनुष्य की जटिलता का संकेत है

अंह एक उत्पादन है, जबकि भय और सेक्स मनुष्य की सहजात प्रवृत्तियाँ हैं । शेखर की निर्भीकता उसके स्वच्छन्द विचारों और राष्ट्रीय आतंकवाद में उसकी हिस्सेदारी में स्पष्ट झलकती है । वे डर को समाज की आधारशिला घोषित करते है–" डर के बिना समाज का अस्तित्व नहीं चल सकता।"

नैतिक वर्जनाओं से जकड़े भारतीय समाज में सेक्स एक रहस्य है, एक अपराध है, एक धार्मिक अनुष्ठान है, नारी उत्पीडन है वह सहज अनुभूति नहीं है। शेखर अपने अंह और भय के स्तर पर चाहे जिन अतिवादी बिन्दुओं पर हो, सेक्स स्तर पर वह एक उदात्त स्वच्छन्दतावादी है। वह जिस शिक्षित व आधुनिक परिवार के परिवेश में था, उसमें स्त्रियों को देखकर यौनाकर्षण स्वाभाविक था और परम्परागत दबावों की वजह से जाहिर है कि वर्जना रेखा भी कठोर थी। परिणामतः शेखर की आकांक्षा और यथार्थ की टकराहट की एक ही परिणिति थी– वेदना। शेखर में प्रेम की वेदना है, वेदना से प्रेम नहीं, जो अततः अस्तित्व की वेदना में रूपान्तरित होती हैं । शेखर इस बिन्दु पर सामन्ती कठोरता और पूँजीवादी व्यवस्था की विकृति दोनों के तनाव झेलता है वह अपने प्रेम की शक्ति से ही रूढ़िवादी नैतिकता और आधुनिकीकरण की विकृतियों को चुनौती देता है ।

इस उपन्यास पर आक्षेप लगाया जाता है कि शेखर के शारदा, सरस्वती, शान्ति और विशेषतः शशि से कितने अनोखे और गैरपरम्परागत सम्बन्ध है। यह भी एक तरह की नैतिक यूथमंडूकता है कि स्त्री–पुरुष के सम्बन्धों को सेक्स के आधार पर देखा जा सकता है। उसे दो व्यक्तियों के खुले आत्मीय सम्बन्ध की भूमि पर समझने की कोशिश नहीं होती। शेखर चारित्र्य पर जोर देता है, किन्तु परम्परागत पाठकों को वह चरित्रहीन लगता है ।, इस उपन्यास को मनोविश्लेषणवादी दृष्टिकोण से देखकर उसके साथ न्याय नहीं हो सकता, क्योंकि इसके केन्द्र में प्रेम की वैयक्तिक अनुभूति है, जो सामन्ती यथास्थितिवाद को विचलित करती है और भोगवादी पश्चिमी सभ्यता के मॉडल को भी चुनौती देती है।

सामन्ती नैतिकता को चुनौती देने के साथ ही रुग्ण आधुनिकीकरण के प्रति शेखर का आलोचनात्मक रुख इस उपन्यास की एक और परत खोलता है । अज्ञेय आधुनिक जीवन में निहित आग से सम्पूर्ण मानवता को आलोकित करने वाली दीप्ति के रूप में ग्रहण करना चाहते थे, पर ऐसी आधुनिकता मानवता को जला सकती है ।

एक बार बनारसीदास चतुर्वेदी ने अज्ञेय से पूछा कि –"शेखर के निर्माण के समय में आपके सामने क्या कोई विदेशी पात्र था? उनका उत्तर था कि –" ज्यों क्रिस्तोफ ने अनवरत आत्मशोध औरआत्मसाक्षात्कार का जो चित्र प्रस्तुत किया है, उससे मुझे प्रेरणा मिली है।" शेखर में एक सीमा तक आत्मशोध की प्रक्रिया है और वह अपने अंह से बाहर निकलता है और सामाजिक उद्देश्य से अपने भय को तोड़ता है । उसका रोमांटिसिज्म उसे सामन्ती संस्कारों से विद्रोह की ओर प्रेरित करता है । उसका स्वातंत्र्यबोध जितना अस्तित्ववाद की देन है, उससे काफी अधिक रोमांटिसिज्म की देन है।

अज्ञेय शेखर के माध्यम से हिन्दी भाषा को हिन्दी जाति से जोड़ने का कार्य करते हैं। शेखर के पिता उस वर्ग के थे जो स्वप्न भी अंग्रेजी में देखते हैं। वे अंग्रेजी के पक्ष में खड़े होकर ताना मारते है कि हिन्दी की हैसियत क्या है? शेखर जातीय स्वाभिमान के साथ कहता है कि हिन्दी जन भाषा है... हमारा अतीत इसमें बंधा है। इसे करोड़ों लोग बोलते हैं। पिता कहते है पर जिस भाषा से भविष्य ना बने उसके अतीत का क्या करें। शेखर जवाब देता है– मुझे तो भविष्य हिन्दी में ही दिखता है। अगर हमसे हिन्दी छूट गयी तो भविष्य हुआ–न–हुआ बराबर है।

शेखर की वैयक्तिक स्वातन्त्र्य चेतना राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम से भी सम्पर्क स्थापित करती है। वह असहयोग आन्दोलन में शामिल होकर विदेशी वस्त्रों की होली जलाता है। वह इस कार्य में जेल जाता है। उसे फाँसी की आशंका होती है ; पर उसे फांसी की कल्पना मुग्ध करती है– उसमें साँप की आँखों सा अत्यन्त तुषारमय किन्तु अमोघ सम्मोहन होता है।"

अज्ञेय और शेखर का बुनियादी गठन छायावादी युग का था। परिणामतः भावनाशील और कल्पनाशील होते हुए भी उसमें विस्तृत तर्कबुद्धि है। उसकी अनुभूति अपनी विस्तृत कल्पनाशीलता में एक बौद्धिक अनुभूति है। उसमें प्रेम के साथ ' एक शीतल बौद्धिक प्रेरणा भी है। छायावाद ने किसी बिन्दु पर जीवन की समस्याओं को वेदना से प्रेम में केन्द्रित कर रखा था, जबकि अज्ञेय इस उपन्यास में कहते हैं, जिन्हें हमेशा नयी समस्या से टक्कर लेने में मजा आता है,उनके सामने पहली समस्या दुख दर्द की ही होती है। संसार का पहला दर्शन सदा ही उसके पीड़ा भरे रूप का दर्शन होता है।' शेखर की यथार्थोन्मुखता छायावाद का अतिक्रमण है। छायावाद राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य की बात करता है, जबकि शेखर देश की आजादी के साथ व्यक्ति स्वातन्त्र्य का भी उद्घोष करता है। यह छायावाद का अतिक्रमण है, साथ ही यथार्थवाद का भी।

Copyright©authors

ISSN 2277-2359
Vol-12-Issue-03
March- 2020

शेखर के व्यक्तित्व में विरुद्धों का सामंजस्य है। उसके व्यक्तित्व को "प्रेम और बौद्धिक घृणा के साथ विद्रोह – ये दो तत्व आकार देते हैं। वास्तव में शेखर एक जीवनी छायावाद के उच्चतर मूल्यों को समटते हुए उसका अतिक्रमण है। शेखर की सोच में अन्तर्विरोधों की भरमार है, उसमें 'आधुनिकता की आड़ी–तिरछी, एक–दूसरे को काटती हुई कई परतें 'है। अज्ञेय ने शेखर के अन्तर्विरोधों को छिपाया नहीं है, अपितु खुल कर अभिव्यक्त किया है।

एक व्यक्ति को साप ने काट खाया, फिर भी वह मन्दिर के अंदर गया और पूजा करने के बाद ही उपचार शुरू किया। किन्तु घंटे भर में ही उस आदमी के मर जाने पर शेखर संशयग्रस्त हो उठा कि" ईश्वर क्या तू सचमुच है?" अतः शेखर का दर्शन अनीश्वरवादी है, वह ईश्वर से घृणा करता है। नवजागरण , स्वाधीनता संग्राम, और विश्व की परिस्थितियों में आ रहे बदलाव की वजह से भारत के जागरूक लोग न केवल राजनैतिक आजादी चाहने लगे थे, बल्कि अब अधिक खुलकर धर्म के उपनिवेश से भी मुक्ति चाहते थे। उसका मानना था कि– "कोई ऐसा नहीं है जिस पर निर्भर किया जा सके, जिसे प्रत्येक बात में पूर्ण, अचूक माना जा सके। यदि किसी का कोई है तो उसकी अपनी बुद्धि, मनुष्य को इसी के सहारे चलना है, इसी के सहारे जीना है।" यह बुद्धिवाद है और यह सामन्तवाद से संघर्ष है।

शेखर की वैयक्तिक सृजनात्मकता 'मैं' और 'लोक' के बीच एक पुल बनाकर रखती है। यदि शेखर लोक का अंग नहीं है तो उससे दूर और असंवदित भी नहीं है। वह बाढ़ से घिरे निर्धनों की सेवा करता है, बीमार फूला की देखभाल करता है, अछूतों की देखभाल करता है। शेखर में भले ही त्याग का दम्भ हो पर इस उपन्यास में एक खास युग के आधुनिक भारतवासी के बुद्धिवादी, राष्ट्रीय, क्रांतिकारी और मानवीय विमर्श की झलकें हैं। निसन्देह अज्ञेय ने अपनी वैयक्तिक नजर से उस युग को देखा है,पर यह 'एक आदमी की निजी बात' भर नहीं है।

इस उपन्यास पर दूसरे विश्वयुद्ध काल के अस्तित्ववादी दर्शन की छाया है। अस्तित्ववादी पूंजीवादी व्यवस्था में एक खास मानव–नियति में बाँधने वाला दर्शन है, जबकि अज्ञेय शेखर के बारे में कहते हैं कि " वह नियति का गुलाम नहीं है,उसका प्रतिद्वन्द्वी है।" यह अस्तित्ववाद का अतिक्रमण है। फिर भी शेखर दो ही चीजें चाहता है–व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और मानवीय गरिमा। इसके लिए उसे लगातार व्यवस्था के निषेध एवं विद्रोह से गुजरना पड़ता है, यन्त्रणा से गुजरना पड़ता है, जो अस्तित्ववादी बोध है। शेखर एक गहरी यन्त्रणा के बावजूद अपनी दुनिया को पूरी तरह मिटाना नहीं चाहता,उसे पुनर्निमित करना चाहता है। वह अपने "मैं" को भी नहीं मिटाना चाहता, उसका कोई विश्लेषण आत्मबेधी और निर्मम नहीं है। इसलिए उसकी अस्तित्ववादी आधुनिकता स्वतः सीमित हो जाती है,' व्यक्ति' का पुनर्विन्यास होता है। इस उपन्यास में अस्तित्ववादी विद्रोह के साथ रोमांटिक दर्द भी है, निर्विघ्न और स्वतन्त्र सत्ता की कामना के साथ "मैं" का बोध भी है, जो 'दूसरे' के सन्दर्भ में आकार पाता है। उसमें सन्देह के साथ विश्वास भी है जो शशि के सम्पर्क में पैदा होता है।

शेखर : एक जीवनी की मुख्य समस्या यह नहीं कि शेखर और शशि दूर के रिश्ते के भाई –बहिन हैं और एक दूसरे से प्रेम करते हैं। इस उपन्यास में अज्ञेय नैतिकता और अनुभूति के बीच संघर्ष दिखाते हैं, जो आधुनिक युग में स्वाभाविक है। यह उपन्यास विवाह संस्था 'के कठोर और मानवीय ढांचे' को अनावृत्त करता है। फिर भी एक पुरुष के रूप में शेखर की ईमानदारी एक बिन्दू के बाद शक के दायरे में आ जाती है। शशि ने शेखर से यहाँ तक कहा था – तुमसे मेरा वह जीवन है जो मैं हूँ, जो मेरा मैं है शेखर अपने मैं को अथ देने के चक्कर में शशि के मैं को दबा ही रहने देता है। अज्ञेय शशि को प्रेरणा मूर्ति बनाकर रखते हैं। वे शशि को तटस्थ होकर देख नहीं पाते । इसलिए वस्तुतः उसकी कहानी लिख ही नहीं पाते,वे शेखर में खोये रह जाते हैं।

अज्ञेय अपने जीवन में आगे चलकर स्मृति का दामन ज्यादा कठोरता से पकड़ते हैं, "स्मृति नहीं है, तो व्यक्तित्व भी नहीं है, बल्कि काल भी नहीं है और रचना भी नहीं है । "मैं" जानता हूँ कि मैं कौन हूँ क्योंकि मैं वही हूँ जो मुझे स्मरण है। वही और उतना ही।" (स्मृति के परिदृश्य, 1986) अपने जीवन के अन्तिम दिनों में अज्ञेय (1911–87) ने स्मृतिवाद का दामन थाम लिया था। उन्होंने सन्देह, विद्रोह और लोकोन्मुखता की प्रवृत्तियाँ त्याग दीं, "मैं" को स्मृतिवाद के हवाले कर दिया, कहीं –कहीं नकारात्मक स्मृतिवाद के हवाले।

अज्ञेय को यह महसूस हो रहा था कि उनका उपन्यास शेखर एक जीवनी भाषा के अटपटेपन के बावजूद अभी काफी समय तक पढ़ा जायेगा,उसमें मानवीय परिस्थिति और नियति की कुछ बातें उठायी गयी हैं, जिनकी सच्चाई लोगों को बाद में भी दिखती रहेगी।..... 'नदी के द्वीप ' सफल उपन्यास है, लेकिन मैं सोचता हूँ वह जल्दी पुराना पढ़कर समाप्त हो जायेगा।"

शेखर एक जीवनी के रचनाकाल तक अज्ञेय की वैयक्तिकता और यथार्थ में कोई बड़ा अन्तर्विरोध नहीं था। शेखर सोचता है " व्यक्ति के हित और विश्व के हित में भेद नहीं होना चाहिये। भारतीय नवजागरण और छायावाद की परम्परा में अज्ञेय

Copyright©authors

ISSN 2277-2359
Vol-12-Issue-03
March- 2020

पश्चिमी सभ्यता और राष्ट्रीयता,व्यक्ति और विश्व तथा अनुभूति और यथार्थ के बीच अन्तःक्रिया के पक्षधर थे। वह इस उपन्यास में एक उदार आधुनिक बुद्धिजीवी के रूप में उपस्थित होते हैं, जो पिछड़ी, सामन्ती तथा विकृत पूंजीवादी व्यवस्था से बार–बार आघात पाकर भी यथार्थ से अपना जीवित सम्पर्क बनाये रखती है। इस उपन्यास में अज्ञेय ने विद्रोह की कोई एक निश्चित राह न खोज कर इसकी निरन्तरता का प्रतिपादन किया है, इसके लिए वैयक्तिकता की जरूरत बतायी है । इसमें व्यक्ति के विद्रोह से अधिक बड़ा संसार है विडम्बनाओं का। शेखर इनके बीच स्वचेतना के जरिये अपनी वैयक्तिकता का संरक्षण करता है। अज्ञेय में वैचारिक आक्रमणों के प्रति असहिष्णुता थी और वे प्रतिक्रिया में कुछ मौकों पर व्यक्तिवादी हो गए।

शेखर : एक जीवनी में व्यक्ति के विद्रोह से अधिक बड़ा संसार है विडम्बनाओं का । शेखर इनके बीच स्व चेतना के जरिये अपनी वैयक्तिकता का संरक्षण करता है। उपनिवेशवादी व्यवस्था में आधुनिकीकरण मनुष्य की वैयक्तिकता ही नहीं,खुद व्यक्ति को खत्मकर उसे अपनी विकृत पुनरूत्पादन क्षमता का हिस्सा बना लेता है। आज व्यक्ति पूर्णतः विलुप्त होता जा रहा है। वह उपभोक्तावादी झुंड का अंग बनता जा रहा है। भारतीय वातावरण में व्यक्तिवादी सामन्ती अंह का ही आधुनिकतावादी रूपान्तरण है।

शेखर : एक जीवनी एक व्यक्ति की कथा है, जिसमें युग भी मुखर है। आजादी की देहरी पर मूल्यभ्रान्ति और विडम्बनाओं के बीच से गुजरते हुए शेखर यदि बौद्धिक घृणा और प्रेम के थोड़े संदर्भ भी पहचानता है। पश्चिमी सभ्यता और अतीत से अपने तार्किक संबंध की तलाश में थोड़े विवेक का भी परिचय देता है और अपने दर्द को पारदर्शी बनाता है तो इससे भी पता चलता है कि आजादी की देहरी पर इस देश की आधुनिकता कैसे कौनसा आकार ले रही थी –वह बुद्धिवादी ,राष्ट्रीय चेतना और लोक की आकांक्षाओं से कितनी सम्पर्कित थी, कितनी विच्छिन्न। इसमें सन्देह नहीं है कि एक रात का वह विजन, जिससे शेखर की जिन्दगी आलोकित हुई ,उस युग के यर्थाथ से ही छन कर आया था। यदि शेखर अपने भटकावों से होकर अन्ततः बौद्धिक घृणा और प्रेम की सच्ची राह पर आ खड़ा हुआ तो निश्चय ही जातीय आधुनिक अन्तर्दृष्टि की भूख की वजह से, जो अज्ञेय और उनके युग में थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ–

1. आधुनिक हिन्दी उपन्यास, सम्पादक–भीष्म साहनी, डॉ. रामजी मिश्र
2. शेखर एक जीवनी, प्रथम भाग– सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन अज्ञेय, 2009, प्रकाशन सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद
3. उपन्यास का समाजशास्त्र –संपादिका–गरिमा श्रीवास्तव
4. आजकल– साहित्य और संस्कृति का मासिक– अज्ञेय विशेषांक, अंक–12, अप्रैल 2011
5. हिन्दी उपन्यास राष्ट्र और हाशिया –शंभुनाथ

National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2019, 1(26): 123-125
© 2019 NJHSR
www.sanskritarticle.com

डॉ. नेहा कल्याणी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर (हिन्दी),
गो.से. वर्धा-वाणिज्य महाविद्यालय,
नागपुर

लोक साहित्य और लोकजीवन

डॉ. नेहा कल्याणी

सारांश

साधारण जनता से संबंधित साहित्य को लोकसाहित्य कहते हैं। साधारण जनजीवन विशिष्ट जीवन से भिन्न होता है। अतः जनसाहित्य का उद्देश्य विशिष्ट साहित्य से पृथक होता है। सभी कला और संस्कृति सम्बन्धी महान और मौलिक देनों का उद्गम लोकमानस और लोकप्रतिभा है। आदिम उद्गम होने के कारण यह नहीं समझना चाहिए कि उसका सौन्दर्य और रस प्रवाह अंकिचन है। वह गंगोत्री की तरह स्वच्छ, सुन्दर और अंकिचन है, यह अपनी भाषा को पढने व बोलने वाला हर व्यक्ति ही समझ सकता है। लोकसाहित्य का अभिप्राय उस साहित्य से है जिसकी रचना लोक करता है। लोकजीवन की जैसी सरलतम, नैसर्गिक अनुभूतिमय अभिव्यंजना का चित्रण लोकसंस्कृति व लोकसाहित्य में मिलता है,वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। लोकसाहित्य में मानव का हृदय बोलता है,क्योंकि इसमें जनजीवन की प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक समय व प्रकृति सभी कुछ समाहित है। डॉ. सत्येन्द्र:- "लोक मनुष्य व समाज का वह भाग है जो अभिजात्य संस्कार , शास्त्रीयता एवं पाण्डित्य की चेतना या अहंकार से शून्य हैं और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।"

लोकसंस्कृति व लोकसाहित्य शुद्ध रूप में ग्रामीण परिवेश में ही विचरती है। लोकसंस्कृति व लोकसाहित्य को गवाँरू कहकर उसे उपेक्षित किया जाता है। फिर भी धरातल से उठने वाले लोकसाहित्य ने अपना एक शीर्षस्थ स्थान भी बनाया है,जहाँ उसे वैदिक साहित्य के समकक्ष स्थान प्राप्त है। ऐसा एक भी सांस्कारिक,धार्मिक व पारमार्थिक कार्य लोकजीवन में नहीं मिलता जिसमें वैदिक साहित्य के साथ लोकसाहित्य को स्थान प्राप्त ना हो।

कुंजी शब्दः- लोकसाहित्य, संस्कृति , ग्रामीण, जन परिवेश आदि।

लोक साहित्य और लोकजीवन

सर्वसाधारण जनता से संबंधित साहित्य को लोकसाहित्य कहते हैं। सामान्य जनजीवन विशिष्ट जीवन से भिन्न होता है। अतः जनसाहित्य का उद्देश्य विशिष्ट साहित्य से पृथक होता है। सभी कला और संस्कृति सम्बन्धी महान और मौलिक देनों का उद्गम लोकमानस और लोकप्रतिभा है। आदिम उद्गम होने के कारण यह नहीं समझना चाहिए कि उसका सौन्दर्य और रस प्रवाह अंकिचन है। वह गंगोत्री की तरह स्वच्छ, सुन्दर और अंकिचन है, यह अपनी भाषा को पढने व बोलने वाला हर व्यक्ति ही समझ सकता है। लोकसाहित्य का अभिप्राय उस साहित्य से है जिसकी रचना लोक करता है। लोकजीवन की जैसी सरलतम, नैसर्गिक अनुभूतिमय अभिव्यंजना का चित्रण लोकसंस्कृति व लोकसाहित्य में मिलता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। लोकसाहित्य में मानव का हृदय जनभाषा में बोलता है, क्योंकि इसमें जनजीवन की प्रत्येक अवस्था, प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक समय व प्रकृति सभी कुछ समाहित है। डॉ सत्येन्द्र:- "लोक मनुष्य व समाज का वह भाग है जो

Correspondence:
डॉ. नेहा कल्याणी
असिस्टेन्ट प्रोफेसर (हिन्दी),
गो.से. वर्धा-वाणिज्य महाविद्यालय,
नागपुर

अभिजात्य संस्कार , शास्त्रीयता एवं पाण्डित्य की चेतना या अहंकार से शून्य हैं और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है।"[1]

आदिकाल में श्रुति व स्मृति के सहारे ही जीवित रहने वाले लोकसाहित्य के कुछ विशेष सिद्धान्त हैं। इसमें मुख्यतः वे ही रचनाएँ स्थान प्राप्त करती हैं,जो अनेक कंठों से अनेक रूपों में बन-बिगड़कर एक सर्वमान्य रूप धारण कर लेती है। यह रचनाक्रम आदिकाल से अब तक जारी है। ऐसी बहुत सी सामग्री है जो अभी एकरूपता ग्रहण नहीं कर पाई है। परम्परागत एवं सामूहिक प्रतिभाओं से निर्मित होने के कारण विद्वानों ने लोकसाहित्य को अपौरुषेय की संज्ञा दी है। निश्चय ही परम्परागत लोकसाहित्य किसी एक व्यक्ति के प्रयासों का परिणाम नहीं है। साधारणतः तो इस बात के कई परिणाम दिये जा सकते है कि एक ही गीत, कथा, कहावत स्थान परिवर्तन होने से बदल जाते हैं। फिर भी इस विषय का यही उदाहरण अच्छा होगा कि सैकड़ों वर्षों से गाये जाने वाले लोकमहाकाव्य आल्हाखण्ड को आज तक एकरूपता प्राप्त नहीं हो सकी है; क्योंकि इस कार्य में लोकप्रवृति किसी प्रतिबन्ध को स्वीकार नहीं करती। किसी देश या क्षेत्र का लोकसाहित्य वहाँ की आदिकाल से लेकर अब तक की उन सब स्वाभाविक एवं सहज प्रवृतियों का प्रतीक है, जो साधारणतः जनस्वभाव के अन्तर्गत आती है। अतः यदि किसी स्थान की समूची संस्कृति का अध्ययन करना हो तो वहाँ के लोकसाहित्य का विषेश अवलोकन करना होगा। किन्तु लोकसाहित्य लिपिबद्ध कम व मौखिक ज्यादा होता है। मौखिक होने के कारण स्फुट गीतों में तो केवल पंक्तियाँ जबकि प्रबन्ध गीतों व कथाओं में तो घटनाएँ भी बदलती रहती है, फिर भी उनके परिणामों में कोई परिवर्तन नहीं स्वीकारा जाता। परिणाम तथा लोकप्रचलित सत्य एवं तथ्य को आधार मानकर घटनाचक्र मनमाने ढंग से चलाये जाते हैं। रामकथा के उदाहरण को ही लें। **"नाना भाँति राम अवतारा रामायन सत कोटि अपारा"**[2] वाली बात शत-प्रतिशत सत्य है। रामकथा सम्बन्धी जितनी विविधताएँ लोकसाहित्य में प्रचलित हैं , यदि उन सबको एकत्र किया जाये तो एक विचित्र प्रकार का **"लोकरामायण"** ग्रन्थ तैयार होगा, जो अब तक के सभी रामाख्यानों से भिन्न अस्तित्व का होगा। घटनाचक्रों को देखते हुए घटनाओं की संगति बैठाना भी कठिन होगा। उदाहरणस्वरूप लोकसाहित्य में रामजन्म के कई कारण बताये गये हैं जिनमें से एक इस प्रकार है- एक बार राजा दशरथ प्रातःकाल सरयू स्नान के लिए जा रहे थे तो रास्ते में झाड़ू देने वाली हेलिन (भंगिन) ने उन्हें ताना मारा कि सुबह ही संतानहीन का चेहरा देख लिया है अब दिन न जाने कैसा बीतेगा? तब दशरथ पुत्रप्राप्ति के लिए वन में तप करते हैं, जहाँ कथा अन्य रामायण की कथाओं से जाकर मिल जाती है। ऐसे अनेक उदाहरण मिल सकते हैं जो परिणाम में तो नहीं किन्तु घटनाओं के मामले में एक नहीं है।

लोकसाहित्य की विषेशताएँ:-

1.उपरोक्त परिवर्तनों को लोकसाहित्य आसानी से स्वीकार कर लेता हैं।

2.इस लोकसाहित्य की सबसे बड़ी विषेशता यही है कि यह अनेक रूपों में होते हुए भी अनेकता में एकता की भावना से युक्त होता है।

3.भाषा के कलेवर को बदलकर भी भावपक्ष में कोई परिवर्तन नहीं दिखता।

4.एक ही रचना जो किसी एक स्थल की बोली में पाई जाती है, वह बहुत दूर दूसरी बोली में भी मिल जाती है।

5.स्फुट गीतों के भावों व प्रबंधों की लम्बी यात्रा आश्चर्यजनक होती हैं।

6.भौगोलिक सीमा से मुक्त होता है। उदाहरणतः जब कोई ग्राम्या नैहर से ससुराल जाती है तो स्वभावतः नैहर की रीतियाँ व गीत उसे याद रहते हैं। यदि उसका विवाह मायके की बोली वाले क्षेत्र में हुआ तो ठीक, किन्तु अन्य बोली के क्षेत्र में विवाह होने पर वह नैहर की स्मृतियों को स्थानीय बोली के लहजे में ढाल लेती हैं

7.इसका स्वरूप अधिकांशतः मौखिक होता है।

8.नामरहित रचनाकारों की कृतियों की संख्या अधिक।

9.लोकगायकों की एक प्रवृति यह होती है कि वे स्थानीय घटनाओं को तुरन्त भावबद्ध कर लेते हैं।

10.लोकसाहित्य में व्यवहार पर आधरित साहित्य अधिक मिलता हैं।

11.लोकसाहित्य की रचना जनभाषा में की जाती है।

लोकसाहित्य के प्रकार:-

इस साहित्य की प्राचीनता की तरह ही लोकसाहित्य की कुछ विषेश प्रवुतियाँ है ,जो निम्न प्रकार से है-

1.धार्मिकता पर आधारित साहित्य:-धार्मिकता व नैतिकता तो लोकसाहित्य का प्राण ही है।।मानव प्रारम्भ से ही न्यूनाधिक रूप में धर्म पर आश्रित रहीं है। इसमें भक्ति और भय दोनों प्रकार की भावनाएँ सन्निहित रहती है। वैदिक ऋषियों ने सामाजिक सरंचना के समय सृष्टि को इस भाँति धर्म से जोड़ दिया है कि समस्त सृष्टि ही धर्ममय हो उठी है। मानव जिन गूढ रहस्यों को साधने में सदियाँ लगाता, धर्म के भय से उसने उन्हें शीघ्र सीख लिया। इसमें कुछ विश्वासों को आंचलिक एवं कुछ को व्यापक महत्त्व दिया जाता है। जब भी मानव कोई शुभ कार्य (जन्म से लेकर मृत्यु तक के संस्कार, खेती, फसल की पूजा, गृहनिर्माण, कूप व भवन निर्माण और परमार्थिक कार्य) प्रारम्भ करते है,तो उससे सम्बद्ध देवी-देवता को प्रसन्न करने के लिए प्रयुक्त मंत्र व गीत इसी श्रेणी में आते हैं। रोगों के निदान के लिए शीतला माता जैसी देवियों का आव्हान किया जाता है।

2.लोकाचार पर आधारित साहित्यः- इसमें आचार-विचार, व्यवहारिकता एवं विविध लोकमान्यताओं से सम्बद्ध साहित्य आता हैं। आचार-विचार के लिए रचित साहित्य में भावनाओं व मान्यताओं का प्रवेश हैं,किन्तु व्यवहार के लिए रचित साहित्य में यह तथ्य न्यून हैं। हमारे देश में साँप को भी दूध पिलाया जाता है।

इस संदर्भ में रचे-हुए साहित्य का मूल उद्देश्य व्यवहारिकता के आधार पर सरल व सुखी जीवन व्यतीत करना है। परिणामतः जनजीवन एक रिश्ते में बँधा हुआ है और जातीय भेदभाव भी उसकी दीवार को तोड नहीं पाए हैं।

3.वैज्ञानिकता पर आधारित साहित्यः- इसमें ऋतुविद्या, स्वास्थ्य, कृषि, शकुन आदि से सम्बद्ध साहित्य आता है। इसमें पूर्वाचार्यों द्वारा निर्धारित अनुभूमियों, नियमों व उपदेशात्मक बातों का समावेश होता है,जो प्रायः परीक्षा की कसौटी पर खरी उतरती है, किन्तु साथ ही कुछ अपवाद भी है। ऋतुविद्या में अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अल्पवृष्टि एवं तज्जन्य कारणों व उपायों की ओर संकेत है। यही स्थिति कृषि आदि अन्य क्षेत्रों की भी है।

4.जातीय लोकसाहित्यः- विविध जातियों की परम्परागत संस्कृतियों के आधार पर रचित साहित्य में कुल देवताओं, नियम, उपनियम आदि बताए जाते हैं। किसी स्थान का सम्पूर्ण लोकसाहित्य वहाँ की विविध जातियों की सामूहिक संस्कृति का प्रतीक होता है तो अनुपयुक्त नहीं होगा। जातीय साहित्य के बिना लोकसाहित्य का जो रूप बचेगा वह उसका सच्चा प्रतिनिधित्व नहीं करेगा।

5.प्रकृति पर आधारितः- वृक्ष (बरगद,पीपल) को बाबा कहा जाता है। बदली व नदियाँ बहनों का रूप धारण करती है। मौसम, फल-फूल, पहाड, आदि स्थानीय प्राकृतिक तत्वों का सांकेतिक रूप से उल्लेख मिलता है। मानव प्रकृति के कण-कण में ईश्वर का निवास मानता है अतएव उसके प्रति वह पूज्य भाव रखता हैं।

लोकसाहित्य की रचनास्थलीः –

इसकी रचना विशिष्ट साहित्य से भिन्न प्रकार से होती हैं। इसके किसी भी प्रकार का निर्माण एकांत में नहीं होता। लोकसाहित्य का रूप कभी एकसा नहीं रहता। यदि हम कहें कि लोकसाहित्य की प्रमुख रचनास्थली चैपाल व आँगन है तो गलत नहीं होगा। रीतिरिवाज, धर्म, राजनीति, खेती, लोकगीत आदि समय-समय पर चैपाल को मुखरित करते रहते है। इन सबका निचोड ही स्थानीय साहित्य में शामिल हो जाता है।

लोकसाहित्य का जीवनः- ऐसा नहीं कहा जा सकता कि भूतकाल में रचा गया सभी लोकसाहित्य जीवित है और आज जिनका निर्माण हो रहा है, उनका कभी अन्त नहीं होगा। सच तो यह है कि यह साहित्य सदैव से ही परिवर्तनशील रहा है। विद्वान लोग प्रायः यह कहते है कि यदि विस्तृत लोकसाहित्य का संग्रह नहीं किया गया तो उसका लोप हो जायेगा। यह तथ्य सही है, क्योंकि युग प्रभाव के कारण प्राचीन रचनाएँ अनुपयुक्त प्रतीत होने लगती हैऔर फिर धीरे-धीरे लुप्त होने लगती है। सिनेमा के गीतों के प्रभाव के कारण लोकगीत क्षीणता को प्राप्त हो रहे है। शिक्षा का प्रसार होने के कारण भी आज लोकगीतों की उपेक्षा हो रही है। ऐसा अनुभव होता है कि विविध अवसरों पर गाये जाने वाले प्राचीन लोकगीतों एवं लोकसाहित्य का लोप हो जायेगा।[3]

लोकसाहित्य में सांस्कृतिक चेतनाः- मानव की हर्ष और विशादात्मक मूल भावनाएँ जब परिवेश में व्याप्त सुख-दुःख रूपी मानव विकारों की सहज अनुभूति कर तदाकार हो जाती है, त बवह अपने मन की अतल गहराईयों में अवस्थित किसी घटना के पात्रादि को स्वयं पर आरोपित कर लेता हैं, ऐसे समय पर वाग्देवी स्वयं उसके कण्ठ से फूट पडती हैं। इस प्रकार लोककण्ठ से सहज रूप से निसृत कथा, वृतान्त, घटना आदि लोक में प्रचलित शब्दों का परिधान पहनकर इठलाती, बलखती, थिरकती और गाती हुई लोक को इतना विमोहित कर लेती है कि एक कण्ठ से दूसरे कण्ठ में, अपने अधिवास की अनेक शताब्दियाँ व्यतीत कर देने पर भी यदा-कदा थोडे बहुत वस्त्र बदलकर उसी रूप में अपने आकर्षण के जादू से लोक को विमोहित किए रहती है। वर्तमान युग में लोककण्ठ की इस अनिन्द्य सुन्दरी का नाम ही लोकसाहित्य हैं। लोकसाहित्य में सम्पूर्ण लोक, समाज, रीतिरिवाज, सम्बन्ध, संस्कार, त्यौहार, रूढियाँ, परम्पराएँ आदि सबका चित्रण रहता हैं। संस्कृतियों का यह दबा कुचला शरीर लोकसाहित्य की अन्तःचेतना बनकर एक युग से दूसरे युग को उसके विकास की सूचना देता है।[4]

लोकजीवन में लोकसाहित्य का स्थानः-

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि धरातल से उठने वाले इस साहित्य ने अपना एक शीर्षस्थ स्थान बनाया है,जहाँ उसे वैदिक साहित्य के समकक्ष स्थान प्राप्त है। प्रमाण यह है कि हमारे लोकजीवन में विशेषतः संस्कारिक व धार्मिक कार्य वैदिक मंत्रों से पूर्ण होते हैं। जहाँ ये मन्त्र संस्कृत में पढे जाते हैं, वहीं ग्राम्याओं द्वारा गाए जाने वाले लोकगीतों पर आधारित क्रियाकलाप चलते रहते हैं। ऐसा एक भी संस्कारिक व धार्मिक कार्य नहीं मिलता जिसमें वैदिक साहित्य के साथ लोकसाहित्य को स्थान प्राप्त ना हो।

सन्दर्भ ग्रंथः-

1.गोवर्धन यादवः- लोकसाहित्य व लोकजीवन
2.हंस पत्रिका
3.डॉ. सत्येन्द्रः- लोकसाहित्य में लोकजीवन
4.डॉ. जगदीश व्योमः लोकसाहित्य में सांस्कृतिक चेतना

2019-20

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयताम्।। ऋ० १/८९/२

ISSN : 2395-7115

Impact Factor
3.478

साहित्य, समाज और किन्नर
(विशेषांक)

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL MULTI DISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY REFEREED RESEARCH JOURNAL

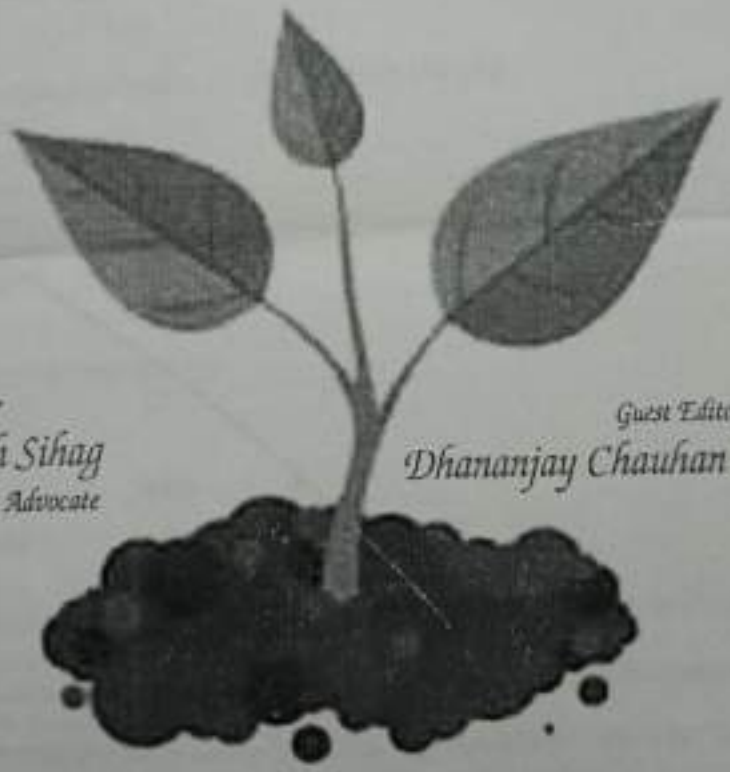

Editor
Dr. Naresh Sihag
Advocate

Guest Editor
Dhananjay Chauhan Mangalmukhi

Publisher :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board, Bhiwani, Haryana-127021

Bohal Shodh Manjusha

AN INTERNATIONAL REFERFED/REVIEWED AND INDEXED MULTIDISCIPLINARY
& MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY
(MARCH, JUNE, SEPTEMBER AND DECEMBER) RESEARCH JOURNAL
ISSN 2395-7115

सम्पादकीय सम्पर्क :
डॉ. नरेश सिहाग एडवोकेट
कमरा नं. 175, लघु सचिवालय,
भिवानी–127021 (हरियाणा)
Email : nksihag202@gmail.com
मो. 09466532152

उपकार्यालय :
सहदेव शास्त्री
शिवपुरी, नरवाना रोड,
जीन्द (हरियाणा)
मो. 09416253826

Published by :
Gugan Ram Educational & Social Welfare Society (Regd.)
202, Old Housing Board,
Bhiwani-127021 (Haryana) INDIA
Email : grsbohal@gmail.com
Facebook.com/bohalshodhmanjusha
Website : www.grngo.org
WhatsApp : 9466532152

All Right Reserved by Publisher & Editor

Price : Yearly

Individual/Institutional : 1100/-

Disclaimer :
1. Printing, Editing, Selling and distribution of this Journal is absolutely honorary and non-commercial.
2. All the Cheque/Bank Draft/IPO should be sent in the name of Gugan Ram Educational & Social Welfare Society payable at Bhiwani.
3. Articles in this journal do not reflect the Views or Policies of the Editor's or the Publisher's. Respective authors are responsible for the originally of their views/opinions expressed in their articles.
4. All dispute will be Subject to Bhiwani, Hry. Jurisdication only.

Printed by : Manbhawan Printers, Old Bus Stand Road, Naya Bazar, Bhiwani (Hry.)

क्र.	विषय	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय	सम्पादकगण	8–8
2.	किन्नरों का संघर्ष	डॉ. मुक्ति शर्मा	9–10
3.	ताली बजाएगें नही ताली बजवाएगें	मिलन बिश्नोई	11–12
4.	संस्कृत वाङ्मय में 'किन्नर'	खुशवन्त कुमार माली	13–14
5.	किन्नर विमर्श और चित्रा मुद्गल का उपन्यास पोस्ट बॉक्स न. 203 नालासोपारा	डॉ. मुकेश कुमार मिरोठा	15–19
6.	किन्नर तथा किन्नर देश का इतिहास	गलदन सेंगें नेगी	20–24
7.	किन्नर और उनके रीति रिवाज	निशा नंदिनी	25–26
8.	किसी दूसरे गृह के प्राणी नहीं हैं : किन्नर	मुकेश कुमार ऋषि वर्मा	27–28
9.	बदलती स्थिति बदलता जीवन: किन्नरों के परिप्रेक्ष्य में	डॉ. अनिला मिश्रा	29–32
10.	समाज में किन्नरों का स्थान	डा. परशुराम गणपति	33–34
11.	समाज में किन्नरों का स्थान	डॉ जे.के.एन. नायन	35–38
12.	संवैधानिक दृष्टिकोण और किन्नर समाज	डॉ. राहुल शुक्ला, अरुण कुमार	39–42
13.	तीसरी सत्ता का संघर्ष	Vipul Shiv Sager	43–53
14.	थर्ड जेंडर : एक नजर में	देवेन्द्र कुमार	54–55
15.	थर्ड जेंडर: समाज और साहित्य	डॉ. मधु संधु	56–58
16.	तीसरी ताली : वजूद की तलाश में किन्नर	प्रोफेसर कल्पना गवली	59–63
17.	किन्नरों का इतिहास वर्तमान और भविष्य	श्रीमती इन्दु सिंह	64–66
18.	पुराणों में किन्नर	निशा मुरलीधरन	67–68
19.	किन्नर समाज की शिक्षा एवं संस्कृति	डॉ. अर्चना दूबे	69–71
20.	किन्नर समुदाय 'तृतीय लिंग'	सनोज. पी. आर	72–73
21.	अस्तित्व के लिए जूझता किन्नर समाज	सुमन	74–76
22.	भारतीय समाज में ट्रांसजेंडर	डॉ. अख्तर आलम	77–79
23.	'तीसरी ताली' की तीसरी दुनिया की संवेदना	डा. सरबजीत कौर राय	80–82
24.	हिन्दी उपन्यास साहित्य में तृतीय लिंगी विमर्श	डा0 परमजीत कौर	83–86
25.	हिजड़ों के जीवन का यथार्थ और किन्नर कथा	सुशील कुमार	87–89
26.	संवैधानिक दृष्टिकोण और किन्नर	संजय कुमार अधिवक्ता	90–94
27.	किन्नर समाजशास्त्रीय अध्ययन	डॉ. करन सिंह चौहान, कुँवर भीम सिंह	95–97
28.	'बीच के लोगों' का पता बताता उपन्यास : पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा	डॉ. अमरदीप दयोल	98–100
29.	समाज में किन्नरों की स्थिति और उनके पुनर्वास की सम्भावनायें	सना परवीन	101–103
30.	किन्नर समाज – कल आज और कल	नीतू गुप्ता	104–105
31.	साक्षात्कार : किन्नर विशेषांक	डॉ. पार्वती जे. गोसाई	106–109
32.	किन्नर : कल और आज	डॉ. नेहा कल्याणी	110–115
33.	किन्नर : उद्भव, अतीत एवं वर्तमान	होशियार सिंह	116–118
34.	किन्नरों की पहचान	दीपशिखा	119–120
35.	किन्नरों के लिए सरकारी योजनाएं	डॉ० विजय लक्ष्मी	121–122
36.	किन्नरों के रीति–रिवाज	डॉ. हितेष कल्याणी	123–124
37.	किन्नर और उनकी संस्कृति	डॉ विनीता लाल,दीपशिखा	125–127

Bohal Shodh Manjusha ISSN : 2395-7115 साहित्य, समाज और किन्नर Page No. :
Impact Factor : 3.478 विशेषांक, मई 2019 110-115
AN INTERNATIONAL MULTIDISCIPLINARY & MULTIPLE LANGUAGES QUARTERLY RESEARCH JOURNAL

किन्नर : कल और आज

बीज शब्द:– जीवित यथार्थ, यमदीप, बुनियादी हक, संवेदनशीलता, किन्नर।

मूल प्रतिपादन:–भारतीय समाज स्त्री और पुरूष नामक दो आधारस्तम्भों पर टिका है, यह ज्ञान बचपन से ही हमें शिक्षकों एवं माता–पिता द्वारा दिया जाता है। स्त्री पुरूष के संसर्ग से संतानोत्पति द्वारा मानव जाति का विकास होता है, यह धारणा युगों से चली आ रही है। लेकिन इसी समाज में प्राचीन काल से ही एक उपेक्षित, अनदेखी, तिरस्कृत प्रजाति भी निवास करती है ,यह बात हमारा सभ्य समाज या तो भूल जाता है या याद नहीं करना चाहता। क्योंकि इस प्रजाति का अस्तित्व उनकी अस्मिता और प्रतिष्ठा पर अनचाही चोट का एहसास देती है। समाज में इन्हें हिजड़ा, किन्नर, खोजा, नपुंसक आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है। संविधान में इन्हें इंटरसेक्स, ट्रांसरेक्सुअल और ट्रांसजेंडर के रूप में पहचाना जाता है और इन्हें थर्ड जेंडर की श्रेणी में रखा गया।

मानव समाज में स्त्री और पुरूष के अतिरिक्त एक तृतीय वर्ग भी है, जो मानव रूप में जन्म लेने पर भी समाज द्वारा अभिशप्त और तिरस्कृत हैं। गर्भावस्था की गड़बड़ी के कारण यौनिक रूप से अपूर्ण यह वर्ग समाज द्वारा निर्वासित जीवन जीने को मजबूर होता है। आजादी के 72 वर्षों बाद भी समाज के वर्गों के साथ ये भेदभाव क्यों? वसुधैव कुटुम्बकम् का संदेश प्रसारित करने वाले इस समाज की नींव ही असमानता पर टिकी है।

यह एक ऐसा वर्ग है, जिसे परिवार से लेकर बाजार तक कोई काम नहीं दिया जाता। आधुनिक समाज में किन्नर वर्ग भीख माँगने और वैश्यावृत्ति करने को मजबूर है। जिस्मफरोशी के दलदल में फँसने से एड्स पीड़ितों की संख्या भी बढ़ रही है।

"कंगन है मेरे हाथ में, पर कलाई में ताकत है पुरूषों से अधिक आवाज है मेरी पुरूषों सी, पर मन मेरा कोमल है पुरूषों से अधिक पर पूछता अस्तित्व मेरा, तू कौन है।" समाज ये नहीं जानना चाहता कि किन्नरों का दर्द क्या है? इनके जीवन का दर्द उनकी अंतिम संस्कार की रस्मों से झलकता है। इस वर्ग का अंतिम संस्कार आधी रात को होता है, पर उससे पहले शव को जूतों से पीटकर दुआ माँगी जाती है कि ऐसा जन्म फिर ना मिले। इन्हें कोई बीमारी होने पर चिकित्सक इन्हें छूता नहीं है। हमारे देश में हर वर्ग के लिए चिकित्सा उपलब्ध है, पर किन्नरों के लिए नहीं।

किन्नर विमर्श की पुरातनता:– किन्नरों के बारे में पौराणिक आख्यानों में रामायण, महाभारत और कौटिल्य के अर्थशास्त्र, कामसूत्र एवं मुगल साहित्य के इतिहास में बहुत सी घटनाएँ मौजूद हैं। सामाजिक धारणाओं और पौराणिक कथाओं से भिन्न साहित्य में किन्नर सम्प्रदाय की एक अलग ही छवि सृजित की गई है। इस का मूल्यांकन करने के साथ ही साहित्य की अंर्तदृष्टि इस सम्प्रदाय को कैसे विश्लेषित करती है, इस ओर भी ध्यान देना आवश्यक है। रामायण के अयोध्याकाण्ड में श्री राम द्वारा स्वयं को मनाने आये हुए स्त्री–पुरूष दोनों को अयोध्या लौट जाने का आदेश देना–

"जथा जोगु करि विनय प्रनामा, विदा किए सब सानुज रामा
नरि पुरूष लघु मध्य बडेरे, सब सनमानि कृपा निधि फेरे।"

रामचरित मानस, अयोध्याकाण्ड 398 / 4

किन्तु उस समय श्रीराम ने हिजड़ों के लिए कोई आदेश नहीं दिया अतः उन्होंने 14 वर्ष तक वहीं रूककर श्रीराम का इंतजार किया और रावण वध के बाद जब श्रीराम अयोध्या वापस लौट रहे थे, तो किन्नरों को वहाँ देखकर पूछा और उनकी स्वामीभक्ति से प्रसन्न होकर कलयुग में उनकी प्रसिद्धि का वर दिया। रामायण में वर्णित इस आख्यान द्वारा उनके अस्तित्व की पुरातनता तो सुनिश्चित हो जाती है। साथ ही महाभारत में भी शिखण्डी और अर्जुन का बृहन्नला रूप आदर्श माना गया है। गुजरात के किन्नर अर्जुन के बृहन्नला रूप की पूजा करते हैं। यहाँ किन्नरों की इष्ट देवी बहुचर मन्दिर

में लोग किन्नर बनने की इच्छा से आते रहते है। ये खप्परधारी देवी और शिव के अर्द्धनारीश्वर रूप के उपासक है। मिस्त्र, बेबीलोन और मोहनजोदडो की सभ्यता में भी इनके अस्तित्व के प्रमाण मिलते है। संस्कृत नाटकों में भी इनका उल्लेख मिलता है। कौटिल्य अर्थशास्त्र में उपदेश दिया गया है कि राजा को हिजडों पर हाथ नहीं उठाना चाहियें। उनकी शारीरिक कमी की वजह से वे उत्तम कोटि के अन्तःपुर सेवक होते थे। स्त्री पुरुष दोनों बन सकने की क्षमता के कारण वे राजकीय जासूस के पद पर भी कार्य करते थे।दरबारों और मंदिरों में नृत्य कला के प्रदर्शन द्वारा प्रसिद्धि प्राप्त करते थे। अलाउद्दीन खिलजी के समय किन्नर वरिष्ठ सैनिक अधिकारी के रूप में कार्यरत रहे। जहाँगीर ने किन्नर हिलाल को प्रशासनिक अधिकारी व इफ्तिखार खान को जागीर का फौजदार बना दिया था वास्तव में इस समुदाय का इतिहास 4000 साल पुराना रहा है ।

उपयोगिता का सिद्धान्त :– उत्पादन और उपयोगिता का प्रश्न मानवीय समाज का केन्द्र बिन्दु है । समाज में यह नियम प्राचीन काल से चला आ रहा है कि जो उत्पादन करने में अक्षम है, जो उपयोगी नही है उसका अस्तित्व नगण्य है। जैविक और यौनिक भिन्नता के दंश से जूझ रहे इस वर्ग के अस्तित्व को भी समाज अस्वीकार्य कर देता है। तीसरी ताली उपन्यास में प्रदीप सौरभ लिखते है कि जैविक एवं यौनिक रूप से अक्षम बच्चे का घर में जन्म उसकी उपयोगिता को ही खत्म कर देता है। यौनिक रूप से अविकसित न केवल उस बच्चे के व्यक्तित्व को समाज प्रश्नों के घेरे में खडा करता है अपितु उस अविकसित बच्चे के माता–पिता को भी संदेह की दृष्टि से देखा जाता है। समाज में अपनी प्रतिष्ठा को बचाने एवं समाज की शंकालु दृष्टि से बचने के लिए परिवार उस बच्चे का परित्याग कर देता है। समाज के साथ–साथ राज्य भी उनके प्रति अपने उत्तरदायित्व को अनदेखा कर देता है।

यमदीप उपन्यास में महताब गुरू कहते हैं कि– कोई कुछ नही करता। समाज भी नहीं, सरकार तो अपना वोट माँगने के लिए उन्हीं के सामने चारा फेंकेगी न, जो रोज मुर्गियों की तरह अंडे देकर आबादी बढायेगी। हम कौन से अण्डे देने वाले हैं। अल्लाह ने हमें वो नेमत तो दी नहीं।"हिजडा समुदाय के इसी जैविक यथार्थ के दम पर समाज ने इन्हें मुख्य धारा से निकालकर बाहर कर दिया है। व्यक्ति की उपयोगिता को समाज क्यों उसके अविकसित अंग से ही सुनिश्चित करना चाहता है?यह बुद्धिजीवी समुदाय के लिये विचारणीय प्रश्न है।

इसी उपन्यास में लेखिका इनकी उपयोगी भूमिका की ओर ध्यान केन्द्रित करते हुए कहती हैं कि– जैसे मुबंई में एक कंपनी में बकाया धन की वसूली के लिए इनकी नियुक्ति होने पर वर्षों से बकाया ऋण राशि शीघ्र वसूल हो गई। विडम्बना:– ये समाज केवल जैविक असमानता को ही नहीं झेलता, बल्कि सामाजिक लिंग आधारित असमानता का भी सामना करता रहा है। समाज में स्त्री पुरुष निर्धारित खांचों से बाहर इनकी यौनिक पहचान और अस्तित्व बार–बार इस असमानता को झेलने के लिए मजबूर होती है। यमदीप उपन्यास की नंदरानी स्कूली शिक्षा के दौरान आए शारीरिक बदलावों को महसूस करने लगी। "क्या नंदरानी तुम कैसे चलती हो? हम लोगों की तरह ठीक से चलो।..... कहीं हिजडे देख लेंगें जो तुम्हें भी अपने जैसा समझ लेंगें।" समाज में स्त्री और पुरुष के स्वभाव व व्यवहार को तो स्वीकृति दी जाती है, किन्तु इस समुदाय का व्यवहार असामाजिक माना जाता है। इस समुदाय के बच्चों को किसी प्रकार के यौन व्यवहार की शिक्षा दी नहीं जाती, बल्कि उनके यौन व्यवहार को कानूनी अपराध माना जाता है। ऐसे में इस प्रकार के बच्चे स्वयं से नफरत और आत्महत्या करने को मजबूर हो जाते है। नंदरानी अब महसूस करने लगी थी कि उसके शरीर का विज्ञान ही नंदिनी दीदी के विवाह में बाधक बन रहा है। अपने ही हाव–भाव पर वह कुढ कर रह जाती । कोशिश करती कि खुद को इस दायरे से मुक्त कर पाये; पर प्रयास करने पर भी असफल हो जाती। अब वो खुद से ही दूर भागने लगी थी। अपने ही अस्तित्व को नकारने का प्रयास करने लगी थी। महताब गुरू नंदरानी की माँ को समाज की वीभत्स रूप दिखाते हुए कहते हैं कि अगर ये लूली–लंगडी या शारीरिक रूप से अक्षम होती तो आप इसे अपने पास रख सकती थी , इसे पढाने या नौकरी दिलाने के प्रयास में शायद आप सफल भी हो जाती, किन्तु जैविक रूप से अक्षम होने पर इसे साथ रखने का ख्याल भी परिहास प्रतीत होता है।

तीसरी ताली उपन्यास की निकिता की माँ अपनी कायरता को सामाजिक मजबूरी का नाम देकर बेटी को हिजडा समुदाय को सौंप देती हैं और निकिता परिवार से दूर अपनी इस नई परिस्थिति को समझने, खुद की पहचान एवं अंधेरे भविष्य के प्रति आशंकित महसूस करती हैं । दुनिया की भीड में अपनी अलग पहचान बनाने की चाहत रखने वाली निकिता के

अन्दर आधे–अधूरे होने का हीन भाव गहराने लगा। ..... उसे यह बात अन्दर ही अन्दर भयभीत करती कि उसे भी लोगों के घरों में नाच–गाकर अपनी आजीविका चलानी है। वह समाज के मापदण्डों का आकलन करते हुए स्वयं के बिखरते अस्तित्व को महसूस कर आत्महत्या कर लेती है। अगर कभी परिवार इन्हें अपने साथ रखना भी चाहता है तो समाज से मिले तिरस्कार, अपमान, दंश और घृणा इन्हेंमजबूर कर देती है। निकिता की माँ आनन्दी अपनी बेटी को पढाना चाहती है, पर उसे निराशा ही हाथ लगती है। स्कूल प्रशासन को लगता है कि ऐसे बच्चों को प्रवेश देने से वातावरण खराब होता है और अन्य बच्चो पर प्रभाव पढता है। .....पर क्या कभी इन बच्चों की मानसिक स्थिति के बारे में समाज विचार करता है। क्या इनके जन्म एवं लिंग के अनिर्धारण में ये दोषी है। इन परिस्थितियों को देखकर प्रश्न उठता है कि क्या मनुष्य होना इनके अस्तित्व एवं पहचान के लिए काफी नहीं हैं। क्यों 21 वी सदी के तकनीकी युग में भी इन्हें अपनी पहचान के लिए संघर्ष करना पढता है।

गुलाम मुडी उपन्यास में भी लेखिका निर्मला मुराडिया अंगूरी के माध्यम से कहती है कि – लंगडे को समाज में कोई नहीं दुत्कारता, अन्धे से कोई नफरत नहीं करता किन्तु हम हिजडों के प्रति....।" महताब गुरू और अंगूरी दोनों ही समाज के आईने में हिजडा समुदाय के प्रति उपेक्षा के कारणों को स्पष्ट करते है।

किंवदतियाँ अफवाहें:–यह समाज केवल मुख्यधारा से ही निष्कासित नहीं किया गया है अपितु युवा पीढी में इनके प्रति डर व अफवाहों को भी भरने का प्रयास किया गया है। परिणामतः इनके प्रति समाज का नकारात्मक रवैया इन्हें समाज में आने का प्रयास करने से भी रोकता है । जिससे वे अलगाव की जिंदगी जीने को मजबूर हो जाते है। यमदीप उपन्यास की पत्रकार मानवी महताब गुरू से प्रश्न करती है कि आप लोग युवकों को बहला–फुसलाकर उनको जबरदस्ती हिजडा बना देते हैं। किसी परिवार द्वारा मनचाहा नेग ना देने पर उनके बच्चे को उठा ले जाते है या उन्हें बददुआ देते है जो यकीनन सच हो जाती है। महताब गुरू इन अफवाहों को नकारते हुए कहते है कि क्या हम डॉक्टरी खोले बेठे है? जो किसी को भी जबरदस्ती अपने जैसा बना देगें। मानवी का यह प्रश्न मुख्य धारा के समाज का प्रश्न हैं यही कारण है कि समाज ने इन्हें इंसान की जगह शैतान समझा। इन पर दया करने के बजाय इनसे घृणा व नफरत की। इनके करीब जाकर उनका दर्द समझने के बजाय स्वयें के चारों ओर एक घेरा बना दिया, जिससे वो उनके इर्द–गिर्द भी ना आ सके।

ये वर्ग ईश्वर से डरता है इसलिए उनकी कोशिश रहती है कि उनकी वजह से किसी का भी दिल ना दुखे ये मरने के बाद ये पुनः इस योनि में जन्म ना लें ऐसा वो बुचरा देवी से प्रार्थना करते रहते है।

अलगाववाद:– यह समुदाय अस्पष्ट जेंडर और यौनिक पहचान के कारण अपने नागरिक अधिकारों से वंचित रहने को भी मजबूर किया जाता हैं। शिक्षा के क्षेत्र में भी ऐसे बच्चों को एक ओर सामाजिक कारणों तो दूसरी ओर अस्पष्ट सरकारी नीतियों के कारण तिरस्कृत किया जाता रहा है। रोजगार की विकल्पहीनता इन्हें परम्परागत पेशा नाच–गाना आदि अपनाने को मजबूर कर देती हैं

एक पुरुष का स्त्रियों की भाँति नृत्य और संगीत में रूचि उसके व्यवहार को स्त्रैण बनाता है और समाज में वह बच्चा एक अलग दृष्टि से देखा जाने लगता है। गुलाम मंडी उपन्यास का राजा जो शारीरिक रूप से पूरी तरह पुरूष है, किन्तु स्वभाव से स्त्रियोचित गुणों से परिपूर्ण हैं परिणामतः उसे भी इस समाज की मुख्यधारा से अलग कर हिजडा समुदाय को दे दिया जाता हैं ।

तीसरी ताली उपन्यास में ज्योति जैसे युवा आर्थिक बदहाली, यौन शोषण और समाज से प्राप्त तिरस्कार से बचने के लिए हिजडा समुदाय में प्रवेश करते हैं । किन्तु हिजडा समुदाय का नियम है कि वे किसी भी पूर्ण स्त्री या पुरूष को अपने समूह में शामिल नहीं करते, अतः सोनम नामक किन्नर ज्योति को समझाते हुए कहती है कि "मैं तुम्हें हिजडा नहीं बना सकती। भगवान ने तुम्हें पूर्ण मनुष्य बनाया है। ऐसे में ज्योति तर्क देता है कि –माना मैं मर्द हूँ, लेकिन इस समाज ने मुझे मादा की तरह भोक की वस्तु में तब्दील कर दिया है ।मैं मर्द रहूँ या औरत या हिजडा, इससे किसी को कोई फर्क नहीं पडता। पूर्ण होते हुए भी हिजडा ही बना हुआ हूँ। गरीब का बेटा होने से पूरे गांव की भौजाई बन गया हूँ। ज्योति की सामाजिक और आर्थिक स्थिति समाज के तथाकथित वर्ग श्यामसुन्दर सिंह जैसों की उपभोगी प्रवृति और

शौकिया रिवाजों पर घृणा करने का मजबूर कर देती है। ज्योति द्वारा हिजडा बनने का निर्णय इन्हीं स्थितियों का परिणाम था। यह स्थिति एक ओर सामाजिक स्थितियों के प्रति वितृष्णा भरती है तो दूसरी ओर आत्म मंथन करने को भी मजबूर करती है। आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग को लगता है कि इस क्षेत्र में अच्छी कमाई है अत: कुछ परिवार के भरण पोषण के लिए भी इस समुदाय मेंशामिल हो जाते हैं।

इस समुदाय द्वारा वेश्यावृत्ति कर्म में लिप्त होने का तर्क देते हुए कमलादेवी कहती है कि जिनके पास नाच गाने से कमाने का हुनर नहीं होता वे वेश्यावृत्ति को अपनाने को मजबूर हो जाते है। वर्तमान में इस क्षेत्र में लडके लडकियों की तुलना में सस्ते में उपलब्ध है तथा विदेशी ग्राहक उनकी मुहँमागी कीमत देते है। यह प्रक्रिया एक तरह से मानवतस्करी है। तीसरी ताली और गुलाममंडी उपन्यासों में इस वृत्ति का संदर्भ दिया गया है।

न केवल आर्थिक स्थितियाँ अपितु प्रशासनिक स्तर पर भी इस वर्ग से भेदभाव किया जाता हैं । घायल या बीमार हिजडों को अस्पताल में भर्ती नहीं किया जाता, पुलिस चौकी में उनकी रिपोर्ट दर्ज नहीं की जाती। जबरदस्ती थाने में बंद कर उनका दैहिक शोषण किया जाता हैं। जब रक्षक ही भक्षक बन जाये तो उन्हें अपनी सुरक्षा का जिम्मा खुद ही उठाना पडता हैं । महिलाओं के साथ किये गये यौन शोषण का बलात्कार कहकर संविधान में उसके लिए सजा का प्रावधान किया गया हैं, किन्तु इस वर्ग के दैहिक शोषण को संविधान में परिभाषित नहीं किया गया है।

सुझाव:– आर्थिक स्तर पर इनके लिए रोजगार उपलब्ध कराने पर ये पारम्परिक भूमिका से बाहर आकर स्वतंत्र रूप से जीवन यापन कर सकेंगें। नाजबीबी का कथन कि यदि सरकार हमें भी हथियार देदे तो मैं लडूंगी और हिन्दुस्तान के पीछे जान दे दूंगी। उनका यह संकल्प उनके चुनाव में खडे होने की भूमिका को तय करता हैं । ट्रांसजेंडर एक्टिविस्ट लक्ष्मी नारायण त्रिपाठी इस समुदाय के विकल्प में महिलाओं की सुरक्षा की जिम्मेदारी उन्हें देने और इससे संबधित ट्रेनिंग की बात करती हैं

वास्तविक स्थिति:– समाज नें जिस इंसानियत के मापदण्डों पर उन्हें सामाजिक पैमाने से निर्वासित किया हैं , वह मनुष्यता तो सभ्य कहे जाने वाले वर्ग से कहीं अधिक इनमें दिखती है। सडक पर पडी गर्भवती पगली के जन्मजात शिशु को समाज द्वारा उपेक्षित एवं परित्याग किये जाने पर नाजबीबी द्वारा उसे पालने का निर्णय लेती है साथ ही सुधार गृह के सफेदपोश चेहरोंको बेनकाब करने के प्रयास में जीवन से जुझती मानवी की रक्षा करती हैं तो किन्नर कथा की पात्र मातिन बलात्कार से जूझती स्त्री की रक्षा करने का उदाहरण हैं। प्रश्न उठता है कि जिस मानवता और मनु यता की बात मुख्यधारा का समाज करता है क्या वह यही है कि अपने से कमजोर का शोषण करे।

हिन्दी साहित्य में किन्नर विमर्श:–किन्नर' नाम सुनते ही एक लज्जा, घृणा और तिरस्कार का भाव हमारे मन में आ जाता है। लेखन तो दूर इस विषय पर विचार करने पर भी हम शर्म महसूस करने लगते हैं। हिन्दी साहित्य के अतीत पर नजर डालें तो पाण्डेय बैचेन शर्मा उग्र की कुछ कहानियों में जिन लौंडेबाजों का जिक्र मिलता है, ये वही किन्नर हैं इसके बाद लम्बे समय तक साहित्य में इनके बारे में चुप्पी छाई रही। इस चुप्पी को 1999 में नीरता माधव ने अपने उपन्यास 'यमदीप' से तोडा। फिर 2011 में प्रदीप सौरभ का 'तीसरी ताली' 2014 में प्रकाशित महेन्द्र भीष्म द्वारा लिखित 'किन्नर कथा' निर्मला भुराडिया का 'गुलाम मंडी और चित्रा मुद्गल का ' पोस्ट बॉक्स न. 203 नाला सोपारा' उल्लेखनीय हैं । किन्नर लक्ष्मीनारायण त्रिपाठी की अंग्रेजी में आत्मकथा 'मी हिजडा, मी लक्ष्मी शीर्षक से प्रकाशित हुई है। इसका हिन्दी अनुवाद 'मै हिजडा मै लक्ष्मी नाम से हाल ही मै प्रकाशित हुआ है।इन उपन्यासों की कथावस्तु में किन्नर वर्ग की जैविक सरंचना से लेकर सामाजिक, अर्थिक, राजनैतिक संरचना के विभिन्न पहलुओं को सामने लाने का प्रयास किया गया है।

समाज की पीडा की पैरवी में लिखा गया उपन्यास है 'किन्नर कथा' जो किन्नरों को अपने सम्मान और अधिकारों के प्रति जागरूक करता हैं। इसमें समाज, परम्परा और खोखले मूल्यों पर चोट करते हुए नवीन जीवन मूल्यों को अभिव्यक्ति प्रदान की गई है। इस पुस्तक में ऐसे अवांछित प्रसंग उठायें गये हैं, जिनके बारे में सभ्य समाज को विचार करना भी गवारा नहीं है। आज हम21 वी शती में जीते हुए चाँद और मंगल ग्रह पर रहने की बात करते हैं, किन्तु विज्ञान के इस युग में भी यह वर्ग सामाजिक मुख्यधारा से जुड नहीं पा रहा है। इस उपन्यास में राजघराने में जन्मी चंदा के

दर्द की कथा है, जिसके किन्नर होने का पता चलते ही पिता द्वारा कुल की मर्यादा और प्रतिष्ठा के नाम पर उसे मरवाने का प्रयास किया जाता है। इस उपन्यास के कथानक में अधूरी देह की पीडा, सामाजिक उपेक्षा, पारम्परिक एवं पारस्परिक संघर्ष, अवसाद एवं विद्वेष जैसे नकारात्मक भावों को दर्शाते हुए लेखक ने इस वर्ग की पीडा को अभिव्यक्ति देने का प्रयास किया है। शारीरिक रूप से विकलांग व्यक्ति को इतना दंश नहीं झेलना पडता,जितना यौनिक रूप से विकलांग व्यक्ति को।

समाज में किन्नरों से जयादा अभिशप्त समुदाय भला कौन सा होगा? हिन्दी में अधिकांश लेखन या तो पितृसत्तात्मक या नारी विमर्श के नजरिये से हुआ है। यमदीप एक ऐसे वर्ग के कथा है जो भावनात्मक कमियों, सामाजिक तिरस्कार, जैविक अंपगता के बावजूद भी जीवन ऊर्जा से परिपूर्ण हैं। यह वर्ग किसी के अस्तित्व को ठोकर मारे बिना अपने अस्तित्व और प्रतिष्ठा के लिए संघर्षरत हैं । सच भी है कि कभी दलित साहित्य, स्त्री विमर्श या सगुण–निर्गुण या छायावाद–प्रयोगवाद जैसी कोई पृथक साहित्यिक या राजनैतिक धारा किन्नरों के लिए न तो विकसित हुई, न इसकी जरूरत ही महसूस की गई। कथाकार महेन्द्र भीष्म हिजडों के जीवन को यथार्थ के साथ उदघाटित करते हैं यह किसी सामान्य परिवार में नहीं बल्कि राजघराने में जन्मी सोना उर्फ चंदा की कथा हैं राजघराने में किन्नर का जन्म ये बात किसी के गले नहीं उतरती। सोना मौत के मुंह से बच कर एक नये नाम, नयी पहचान–चंदा बनकर किन्नर समाज में पहुंच जाती हैं । किन्नर समाज की गुरू तारा ने चंदा को संवारा है, दुलारा हैं । स्वयं को मानव कहने वाला ये सभ्य समाज क्या वास्तव में मानव है ये मानवता का ढोंग कर रहा है, ये प्रश्न विचारणीय हैं । आज आवश्यकता है कि सभ्य कहलाने वाला हमारा समाज इस उपेक्षित वर्ग के सम्मान के लिए प्रयास करें। उनहें भी आम आदमी की तरह जीने का अधिकार हैं उनकी व्यथा–कथा, समस्याएं, उपेक्षा और तकलीफ से समाज को साक्षात्कार करने की आवश्यकता हैं । सामाजिक पूर्वाग्रह से युक्त हमारा तथाकथित सभ्य समाज इस वर्ग को हेय और घृणित दृष्टि से देखता हैं। लैंगिक दृष्टि से अक्षम जो लोग समाज में हिजडे' कहकर बुलायें जाते हैं, वे जीवन जीने की कशमकश और ऊहापोह के बीच दर्दनाक जीवन गुजारने पर विवश हो जाते हैं।

हम जिस समाज में रहते है, उस समाज की वैचारिक मानसिकता किन्नरो के उत्थान कार्य के बारे में सोचने से भी हिचकिचाती हैं। नीरजा माधव ने न केवल उनकी सामाजिक स्थिति का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है , अपितु उन्हें समाज मे उनकी बुनियादी हक मिले, इसके लिए भी प्रयास किया है। उपन्यास में कहीं कहीं किन्नरों से डर के संवाद को भी अभिव्यक्ति दी गई है। किन्नर संतान पैदा होने पर माता–पिता का समाज के भय से उसे त्यागना आम बात है।

"लज्जा का विषय नहीं हूं, अम्मा मेरी अंधा, बहरा या मनोरोगी तो नहीं था मैं सारे स्वीकार हैं परिवार समाज में सहज मैं ही बस ममतामय गोद से बिछडा हूं।

निर्मला भुराडिया के गुलाम मंडी उपन्यास में लेखिका ने गहनतम संवेदना के स्तर पर इस वर्ग की पीडा को कुशलता से अभिव्यक्त किया है। किन्नरों की पीडा के साथ ही मानव तस्करी का भयावह चेहरा उपन्यास में बारीकी से दिखाया गया है। लेखिका अपने अनुभवों को उपन्यास में अभिव्यक्ति देते हुए कहती है कि "यर्थाथ से अलग यह उपन्यास रचनाकार के मूल सरोकारों से सीधा जुडा हुआ है, जो पूरी संजीदगी से एक इंसान को इंसान मानने की वकालत करता है..... फिर चाहे वो मजदूर स्त्री हो या समाज से तिरस्कृत किन्नर। क्यो इन्हें अपमान, घृणा और तिरस्कार के साथ देखा गया। इनकी स्थिति में इनका क्या दोष?क्यों ये मानवीय गरिमा के अधिकारी नहीं है।

इसी कडी में प्रदीप सौरभ का 'तीसरी ताली' उपन्यास हैं। ये उस वर्ग का परिचय करवाता है, जो जेंडर के अकेलेपन और अलगाव के बावजूद समाज में जीने की ललक से भरपूर दुनिया का परिचय करवाता है। यह कहानी है गौतम साहब और आनन्दी आंटी की, जो बच्चा होने पर आये किन्नरों को दरवाजा नहीं खोलते है ; इस डर से कि कहीं वे उनके बच्चे को उठाकर ना ले जायें। ये उस वर्ग की कहानी है जिसे न तो जीने का अधिकार है, न ही समाज में रहने का। आर्थिक अभावों के चलते पेट की आग को शान्त करने के लिए उन्हें भीख तक मांगनी पडती है।

चित्रा मुद्गल के उपन्यास पोस्ट बॉक्स न. 203 नाला सोपारा में वर्णित किन्नर वर्ग की जिन्दगी का हर पाठ यातना, क्रूरता और चिर उपेक्षा का पाठ है। इस उपन्यास के संदर्भ में ममता कालिया नवभारत टाइम्स में लिखती है कि'

नाला सोपारा नितान्त नई कथावस्तु प्रस्तुत करने वाला, नये शिल्प का उपन्यास है।" इसमें विनोद उर्फ बिन्नी नामक पात्र को किन्नर होने का दंश झेलते दिखाया गया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि समाज का अभिन्न अंग किन्नर वर्ग के नारकीय जीवन में व्याप्त घृणा, अपमान, घुटन, और इससे बाहर निकलकर मानवीय गरिमापूर्ण जीवन जीने की बेचैनी को हमें समझना होगा। समाज का यह उपेक्षित वर्ग हमारी ओर उम्मीद भरी नजरों से देख रहा है, इसे हमारे समर्थन, स्नेह और अपनेपन की आवश्यकता है।

हिन्दी साहित्य में किन्नर विमर्श अभी अपरिपक्व अवस्था में है, समाज की वैचारिकता इन्हें स्वीकारने में हिचकिचा रही है। किन्नरों के मन की अतल गहराईयों में हिल्लोरें लेती भावनाओं और प्रश्नों का उत्तर नीरजा जी ने अपने यमदीप उपन्यास में दिया है, जिनमें मुख्य है" मुख्यधारा के समाज को किन्नर वर्ग का बुनियादी हक देने के लिए आगे आना चाहियें। मीडिया इस क्षेत्र में सहायक हो सकता है। शिक्षा और संवेदनशीलता इन दो औजारों से किन्नर समाज को विकास की मुख्यधारा से जोडने में मदद मिलेगी। किन्नरों को सामाजिक समता दिलाने में साहित्य महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। आवश्यकता है ऐसे साहित्य पर स्वतंत्र विमर्श की। साथ ही किन्नर वर्ग को स्वंय अपने प्रति संवेदनशील होने की भी आवश्यकता है। किन्नर वर्ग के बच्चों को सामान्य बच्चों के समान वातावरण प्रदान करना समाज की जिम्मेदारी है, जिससे इस वर्ग का आर्थिक, राजनैतिक व सामाजिक दृष्टि से विकास हो सके।

बदलावः–विश्व में इस वर्ग को ट्रांसजेंडर के रूप में मान्यता मिली है। 2006 में इंडोनेशिया के विश्व सम्मेलन में इस वर्ग के अधिकारों के लिए सिद्धान्तों को स्वीकार किया गया । तत्पश्चात्त बिटेन, आस्ट्रेलिया, यूरोप आदि देशों में इस वर्ग के लिए नियम बनाये गये। 15 अप्रैल 2014 को भारत के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति के एस. राधाकृष्णन और ए. के. सीकरी ने तीसरे जैण्डर को मान्यता देते हुए ऐतिहासिक फेसला दिया।संसद में पेश हुए विधेयक में इस वग 'को भेदभाव से बचाने और उनके अधिकारों के संरक्षण के लिए केन्द्रिय केबिनेट ने 'ट्रांसजेंडर पर्सन बिल 2016 को मंजूरी दी है, इसके माध्यम से सरकार इस वर्ग के लिए सामाजिक, आर्थिक, और शैक्षणिक सशक्तीकरण के लिए तंत्र विकसित करेगी। 'अदालत ने किन्नर समाज को कागजों पर तो न्याय दे दिया, किन्तु इस न्याय को व्यवहारिक रूप से क्रियान्वित करने की जिम्मेदारी समाज की होगी। अस्पष्ट लैंगिक पहचान वाला ये वर्ग संसार के सभी देशों में कहीं कम तो कहीं ज्यादा अनुपात में शोषण का शिकार हो रहा है।आधुनिक दौर में उपजे विमर्श और अस्मिताओं के आन्दोलन का प्रभाव किन्नरों की स्थिति पर भी पडा। मुख्य चुनाव आयुक्त टी. एन. शेषन ने 1194 में किन्नरों को मताधिकार दिया, तत्पश्चात् 15 अप्रैल 2014 को सर्वोच्च न्यायालय ने किन्नरों को तीसरे लिंग के रूप में मान्यता देने के साथ ही उन्हें शिक्षा व रोजगार के अवसर देने का प्रस्ताव भी पास किया। बच्चा गोद लेने का एवं चिकित्सा का अधिकार भी उन्हें दिया गया। पर विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या इसके बाद भी समाज के नजरिये में कोई बदलाव आया है.....?

सन्दर्भ ग्रन्थः–

1 हिन्दी उपन्यास और थर्ड जेन्डर– स्त्री काल
2. नीरजा माधव– यमदीप उपन्यास, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली
3. महेन्द्र भीष्म :– किन्नर कथा, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली
4. निर्मला भुराडिया– गुलाम मंडी, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली
5. प्रदीप सौरभ, तीसरी ताली, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
6. ममता कालिया, नवभारत टाइम्स, सितम्बर– 2016
7. विविध इंटरनेट वेबसाइट्स

–डॉ. नेहा कल्याणी,
सहायक व्याख्याता (हिन्दी विभाग),
गो.से. अर्थ–वाणिज्य महाविद्यालय, नागपुर (महाराष्ट्र).

2019-20

** ISSN 2475-1359 **

* Bilingual monthly journal published from Pittsburgh, USA -- पिट्सबर्ग अमेरिका से प्रकाशित त्रैमासिक अंतर्जाल *

हिन्दी साहित्य और पर्यावरणीय शिक्षा

नेहा हितेश कल्याणी
पी.एच.डी (हिन्दी, संस्कृत), एम. फिल.(संस्कृत), एम.ए. (हिन्दी, संस्कृत), सेट (संस्कृत), सेट (हिन्दी)
सहायक प्राध्यापक, भाषा विभाग (हिन्दी), गो. सी. अर्थ-वाणिज्य महाविद्यालय, नागपुर
दूरभाष: +91 825 798 3333
ईमेल: kalyaninehal00@gmail.com

सारांश:- वैदिक सभ्यता में प्रकृति की पूजा की जाती थी। भारतीय संस्कृति में वन और वनस्पति का आध्यात्मिक महत्व है। प्राचीन काल में मानव प्रकृति को स्वामी और स्वयं को सेवक मानता था, किन्तु कालान्तर में मानव की स्वार्थपरकता और महत्वाकांक्षी दृष्टिकोण ने उसकी सोच को परिवर्तित कर दिया, वह जहाँ जहाँ से गुजरा उसने उसको रेगिस्तान बना दिया आज प्रकृति की भयावह स्थिति इन पंक्तियों में व्यक्त की जा सकती है-
"विश्व जल प्रपंचित, दूषित सृष्टि से।
जल, थल, नभ बदरंग मानव वृष्टि से।।"

भारत में पर्यावरण शिक्षा:- बढ़ते प्रदूषण के खतरों से जनता को परिचित करवाने और पर्यावरण संरक्षण में जन भागीदारी की महत्ता को मानते हुए मंत्रालयों, शोध व अनुसंधान संस्थानों की स्थापना हुई। सर्वप्रथम उच्च शिक्षा स्तर में विश्वविद्यालयों में पर्यावरण शिक्षा प्रारम्भ हुई। 1986 में प्रारम्भ नई शिक्षा नीति में पर्यावरण के प्रति सजगता लाने हेतु पाठ्यक्रमों में इसे शामिल किया गया। राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् को यह जिम्मेदारी दी गई कि वह पर्यावरण को आधार बनाकर शिक्षा का एक मॉडल पाठ्यक्रम तैयार करे। मानव संसाधन मंत्रालय ने भी आवश्यक कदम उठाकर स्कूली शिक्षा में पर्यावरण उन्मुखीकरण की योजना द्वारा इसे पाठ्यक्रम में रखा।
पर्यावरण पर शोध, खोज एवं अनुसंधान के लिए देश में तीन उत्कृष्ट केन्द्रों की स्थापना की जा चुकी है -
1. भारतीय विज्ञान संस्थान- बेंगलौर, आई आई एस
2. पारिस्थितिकी अनुसंधान केन्द्र, अहमदाबाद
3. भारतीय खान संस्थान, धनबाद

कुंजी शब्द:- पर्यावरण, हिन्दी, साहित्य, सर्वेक्षण, शिक्षा आदि

शोध-आलेख

प्रस्तावना:- आधुनिक जीवन की कैसी विडम्बना है कि हम प्रकृति से निरन्तर दूर होते जा रहे है। यहाँ दूरी से मतलब स्थानीय दूरी से नहीं बल्कि प्रकृति की सहचरिता और साहचर्य से है। निरन्तर प्रकृति की उपेक्षा करता मानव यह भूल जाता है कि उसके शरीर की रचना प्रकृति के पंच तत्वों से मिलकर ही बनी है। अर्थात प्रकृति तो मानव के तन व मन दोनों में व्याप्त है। प्रकृति के अभाव में सुखमय मानव जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। तुलसीदास ने रामचरितमानस के किष्किन्धा काण्ड में भी यही लिखा है कि -
"क्षिति जल पावक गगन समीरा
पंच रचित अति अधम सरीरा"

वैदिककालीन अध्ययन से पता चलता है कि तत्कालीन समाज में प्रकृति की पूजा की जाती थी। भारतीय संस्कृति में वन और वनस्पति का आध्यात्मिक महत्व है। परिणामतः भारतीय संस्कृति को अरण्य संस्कृति कहा जाता था। प्राचीन काल में मानव प्रकृति को स्वामी और स्वयं को सेवक मानता था, किन्तु कालान्तर में मानव की स्वार्थपरकता और महत्वाकांक्षी दृष्टिकोण ने उसकी सोच को परिवर्तित कर दिया, वह जहाँ-जहाँ से गुजरा उसने उसको रेगिस्तान बना दिया। 21 वीं सदी की ओर बढ़ते मानवीय कदमों ने जहाँ एक ओर प्रकृति को उपेक्षित कर दिया है, वहीं दूसरी ओर अपनी लोलुपता को प्रकट किया है। आज प्रकृति की भयावह स्थिति इन पंक्तियों में व्यक्त की जा सकती है-
"विश्व जल प्रपंचित, दूषित सृष्टि से।
जल, थल, नभ बदरंग मानव वृष्टि से।।"

डॉमाल में जहाँ हर ओर पारिस्थितिकी असन्तुलन होता जा रहा है। वहीं मानव जीवन में भी अनेक विसंगतियाँ पैदा हो रही है। इन विसंगतियों में जनसंख्या वृद्धि, तथा पर्यावरण के प्रति नागरिक सजगता का अभाव प्रमुख है। पर्यावरण के तीन प्रमुख प्रकोष्ठों वायु, जल, और स्थल के प्रदूषणों से वायुमंडल प्रदूषण, जल प्रदूषण तथा स्थल प्रदूषण फैलता जा रहा है जिससे न केवल मानव जगत को अपितु जीवन एवं वनस्पति जगत को भारी खतरा पहुँच रहा है।

English हिन्दी Poetry
Author काव्य लेखक आलेख Fiction
Editorial कहानी समीक्षा लघुकथा
Review Book पुस्तक अनुराग शर्मा
Sunil Sharma Anurag Sharma Interview
अनुवाद Translation सम्पादकीय Excerpt
निबंध शोध Ghazal ग़ज़ल मोहर वान Photo
Feature Art पोस्टर पत्र गीत समाचार
साक्षात्कार जीवनी आत्मकथा पोस्टर
Autobiography चित्र डिजिटल कला Novel
संस्मरण India@70 My world and words
वाल पत्रकारी प्रतियोगिता सम्मान Travelogue
Mauritius Report Memoir शोध सम्मान
व्याकरण Heritage अभिमन्यु अनंत Ranking
तिथि एवं Quotes Recent feedback

Search खोज

Pageviews पठन

1,621,106

Like Share 10K people like this. Sign Up to see

Highlight विशेष

लॉकडाउन का सफ़र

- एक ऐसा अनुभव जो सबके लिए जानना जरूरी है - सौम्यरत्न श्रीवास्तव (पुणे से भोपाल) +91 789 873 4994 पढ़ाई के बाद प्लेसमेंट से अन्य राज्य ...

नहीं नहीं बचे हैं वृक्ष, न सपने बचे हैं
काटते जिन पर वे चहकने वे वृक्ष
कट चुके हैं या सूख चुके हैं,
क्या उगें अगूठे और बंजर हम,
अब और, किस बात के लिए कसे हैं?

वातावरण पर्यावरण में जहाँ मानवकृत वैज्ञानिक उपलब्धियाँ, नाभिकीय विभीषिका से उत्पन्न विकार पैदा हो रहे हैं तो औद्योगिक संस्थानों, परमाणु रिएक्टरों तथा पन बिजली घरों की विभीषिकों के उगते धुएं से स्वच्छ वातावरण प्रदूषित हो रहा है। इसी तरह औद्योगिक इकाइयों से निकलने वाला प्रदूषित जल नदी नालों को गन्दा कर रहा है। उपरोक्त प्रदूषणों से मुक्ति की राह में हम प्रदूषण नियंत्रक उपायों को अपना तो रहे हैं। किन्तु जनवृद्धि के कारण वे उपाय निरर्थक होते जा रहे हैं। जनवृद्धि के कारण प्राकृतिक उपादानों से वांछित लाभान्वित नहीं हो पा रहे हैं। कुछ विशेषज्ञों का मानना है कि जनवृद्धि से आर्थिक उपलब्धियाँ अवश्य संस्कृति से पर्यावरण को लाभ हो रहा है। निश्चित ही वर्तमान में भी हमारे देश में इतने प्राकृतिक संसाधन हैं कि यदि हम उनका उपयोग सही ढंग से करें तो आसानी से हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति की जा सकती है। स्वार्थपरक गतिविधियों की कटाई से सुन्दर नगेश अवलोकन करते हैं कि-
"मैं गुजर रहा था, अपने दिनचर्यायित मैदान से
एकाएक चौंक पड़ी, जो मेरे प्रिय पेड़ की थी
कुछ लोग खड़े थे, बड़ी बड़ी कुल्हाड़ियां लिए
वे काट चुके थे इसके हाथ, अब पैर भी काटने वाले थे
हम लोग बात उठा रहे हैं।
अंतिम संस्कार भी करा देंगे
तुम साथ में जाना।"

भौतिकतावादी, सुविधाभोगी और उपभोक्तावादी संस्कृति ने प्रकृति को असहाय व विवश कर दिया है। परन्तु मानव यह भूल गया है कि स्वयं पर हुए अत्याचार से प्रकृति सदैव प्रतिशोध कराती है। जय शंकर प्रसाद ने अपने महाकाव्य कामायनी में लिखा है-
"प्रकृति रही दुर्जेय, पराजित हम सब भूले थे मद में
भोले थे, हाँ तिरते केवल सब विलासिता के नद में।
वे सब डूबे डूबे उनका वैभव बन गया पारावार,
उमड़ रहा था देव सुखों पर दुःख जलधि का नाद अपार।"

उपरोक्त पंक्तियों से स्पष्ट है कि यदि प्रकृति का संरक्षण नहीं किया गया तो वो मानव को भी क्षति पहुंचा सकती है। वर्तमान युग में जनवृद्धि से जीवन यापन का जो दायरा बढ़ा है उसमें कृषि प्रधान क्षेत्रों से जनसंख्या का शहरों की ओर पलायन प्रमुख है। शहरों की भौतिक चकाचौंध, धन, शिक्षा और उच्च जीवन स्तर की लालसा में व्यक्ति औद्योगिक क्षेत्रों की ओर आकर्षित हुआ है। इस परिवर्तन से उद्योगों की उत्पादन क्षमता अवश्य बढ़ी है किन्तु श्रमिकों का शोषण और गरीबी में कोई बदलाव नहीं हुआ है। दूसरी ओर शहरीकरण की इस प्रवृत्ति से गांवों की कृषि उत्पादन स्थिति पर प्रभाव पड़ा। यह अवश्य हुआ कि हरित क्रान्ति और वैज्ञानिक कृषि उत्पादन तरीकों से कृषि उपज में वृद्धि हुई किन्तु जनसंख्या वृद्धि से बढ़ती महंगाई की तुलना में यह वृद्धि बहुत अधिक नहीं थी।
शहरीकरण से शहरों का भौगोलिक विस्तार हुआ जिससे जंगल कटना शुरू हुआ। जंगल कटे तो भीषण पर इसका प्रभाव हुआ। वर्षा कम हुई तो मृदाजल स्रोतों की कमी होने लगी परिणामस्वरूप पौधे के पानी की समस्या सामने आई। कंकरीट के जंगल उगाने के लिए प्रकृति द्वारा उपहार में दिये गये हरे-भरे जंगल कटवाने के बाद धन लोलुप मानव को जब घटती बंजर भूमि जब न हुआ अफसोस की नजरें लगाने वाला कवि सत्य ही वर्षाचक्र से उत्पन्न पर्यावरणीय संकट की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कराता है-
"नू बारिश के सामने आसमान को मत कोस
जब घटते बंजर बनी, तब न हुआ अफसोस।"

योजनाओं के क्रियान्वयन तथा परीक्षण उपायों से समाज को हम जितना दे सकते थे दिए, किन्तु निरन्तर जनवृद्धि के सामने आर्थिक योजनाएँ भी छोटी ही गई है तब पर्यावरण विदों के अनुसार जनसंख्या शिक्षा द्वारा जन चेतना लाना आवश्यक माना जाने लगा, जिससे पर्यावरण असन्तुलन, जनवृद्धि समस्या, उत्पादन हनन तथा गरीबी उन्मूलन आदि के विषय में जनता को जागरूक किया जा सके। पर्यावरण प्रदूषण उन्मूलन, संवर्धन, संरक्षण के प्रति छात्रों, शिक्षकों, पालकों एवं नागरिकों में चेतना जगाकर जनों का प्रयास किया जाने लगा। इस चेतना को जगाने का कार्य निम्न प्रकार की पर्यावरण शिक्षा द्वारा किया जा सकता है-
1. शिक्षा पाठ्यक्रमों में पर्यावरण शिक्षा को स्थायी रूप से सम्मिलित करना।
2. पर्यावरण संस्थानों द्वारा पर्यावरण शिक्षा को पाठ्यक्रमों में चलाना।
3. पर्यावरण दलों, क्लबों, जन-विज्ञान जत्थों द्वारा शिक्षा,प्रचारण।
4. स्थानीय प्रशासन द्वारा पर्यावरण शिक्षा का प्रचार-प्रसार।
5. प्रौढ़ शिक्षा समितियों, जनसंख्या शिक्षा क्लबों तथा सामाजिक संस्थाओं द्वारा पर्यावरण शिक्षा।
6. औद्योगिक इकाइयों द्वारा श्रमिक बस्तियों में पर्यावरण शिक्षा का आरम्भ।

यदि अब भी हम पर्यावरण के प्रति सजग व सतर्क नहीं होंगे तो जल, वायु, खाद्यान्न और प्राकृतिक सम्पदा के स्रोत समाप्त हो जायेंगे। इसके लिए हमें नष्ट होते जंगलों को संरक्षित करना होगा। घने वर्षा वन तैयार करने होंगे जिससे वर्षा हो परिणामतः मृदा में नमी होगी। नमी एवं जल संवर्धन से कृषि में सुधार होगा।
प्रदूषण को रोकने के उपाय:-
1. जल संसाधनों का संरक्षण।
2. औद्योगिक संस्थानों, सड़कों के किनारे, सार्वजनिक स्थलों पर अधिकाधिक वृक्षारोपण करें।
3. कूड़े को कूड़ेदान में फेंककर आसपास के वातावरण को स्वच्छ रखें।
4. वाहनों के हॉर्न तेज आवाज में न हों।
5. जनसंख्या वृद्धि पर रोक लगायें।

भारत में पर्यावरण शिक्षा:- बढ़ते प्रदूषण के खतरों से जनता को परिचित कराकर और पर्यावरण संरक्षण में जन भागीदारी की महत्ता को मानते हुए संस्थाओं, कोष व अनुसंधान संस्थानों की स्थापना हुई। सर्वप्रथम उच्च शिक्षा स्तर में विश्वविद्यालयों में पर्यावरण शिक्षा प्रारम्भ हुई। 1986 में प्रारम्भ नई शिक्षा नीति में पर्यावरण के प्रति सजगता लाने हेतु पाठ्यक्रमों में इसे शामिल किया गया। राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद को यह जिम्मेदारी दी गई कि वह पर्यावरण को आधार बनाकर शिक्षा का एक मॉडल पाठ्यक्रम तैयार करे। मानव संसाधन मंत्रालय ने भी आवश्यक कदम उठाकर स्कूली शिक्षा में पर्यावरण अनुप्रयोगीकरण की योजना द्वारा इसे पाठ्यक्रम में रखा। निम्न दो केन्द्रों को पर्यावरण कार्य में सहयोग का कार्य दिया गया-
1- Centre for Environment Education, Ahmedabad
2- CPR Environment Education Centre, Madras

नई दिल्ली के राष्ट्रीय प्राकृतिक इतिहास संग्रहालय ने जनता को प्राकृतिक वनस्पति, प्राणी एवं पर्यावरण में क्या अन्तर सम्बन्ध होता है, इस बात की जानकारी देने की सुविधा प्रदान की जिससे प्राकृतिक पर्यावरण के बारे में सटीक जानकारी प्राप्त की जा सके।

इन्हें भी देखिये Links

Duotrope

Commonwealth Writers site

WorldCat

The Bombay Review

कविता कोश

MediOx

सेतु पीडीएफ डाउनलोड Setu PDF Download

लेखकों से निवेदन

Write for Setu

सेतु के लेखक

Editorial Board :: सम्पादन मण्डल

हिंदी संस्थान व संसाधन

Contact Setu सम्पर्क करें

सेतु परिचय

वन एवं पर्यावरण मंत्रालय द्वारा 1986 में ही देश में पहली बार 14 कृषि विश्वविद्यालयों में किसी पाठ्यक्रमों के साथ वानिकी विषय पर भी शिक्षा प्रदान की जा रही है। देश के निम्न विश्वविद्यालयों में पर्यावरण पर अध्ययन कराया जाता है-

1. भोपाल विश्वविद्यालय, भोपाल
2. दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
3. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, बनारस
4. बम्बई विश्वविद्यालय, बम्बई
5. पूना विश्वविद्यालय, पूणे

पर्यावरण अनुसंधान के संस्थान- पर्यावरण शिक्षा के साथ ही शोध कार्यों को प्रोत्साहन देने के लिए भारत सरकार ने दो अनुसंधान समितियाँ बनाई है, जो निम्नलिखित है-

1. दि इंडियन नेशनल मैन एण्ड बायोस्फीयर कमेटी
2. पर्यावरण शोध समिति

उपरोक्त दोनों समितियाँ पर्यावरण अनुसंधान के लिए आवश्यकता वाले क्षेत्रों के बारे में अनुशंसाएँ कराती है और तत्सम्बन्धी शोध में अनुसंधान की अनुमति देती है। भूमि, जल, वायु, आकाश और ऊर्जा पर विशेष ध्यान देकर अनुसंधान कार्य किये जा रहे हैं। इन्हें पूर्णता प्रदान करने के लिए दो ही लाइ के दृष्टिकोण अपनाये जा रहे हैं।

प्रथम:- पारिस्थितिक प्रणाली प्रबन्ध।

द्वितीय- प्रबन्ध और प्रौद्योगिकी पहलू

उक्त पहलुओं में पारिस्थितिकी प्रबन्ध प्रणाली के अन्तर्गत पर्वत, वन और भूमि, दलदल और तटीय क्षेत्र, शुष्क और अर्द्ध क्षेत्र, नदियाँ आदि आते हैं। प्रबन्ध और प्रौद्योगिकी पहलू के अन्तर्गत जिनराशी, नियंत्रण विकास, प्रणालियाँ और औजार स्वास्थ्य तथा विष विज्ञान आदि के प्रबन्ध का आयोजन एवं उपयोग प्रबन्ध शामिल है। पर्यावरण पर शोध, खोज एवं अनुसंधान के लिए देश में तीन उत्कृष्ट केन्द्रों की स्थापना की जा चुकी है। जिनमें-

4. भारतीय विज्ञान संस्थान- बंगलौर, आई आई एस
5. पारिस्थितिकी अनुसंधान केन्द्र, अहमदाबाद
6. भारतीय खान संस्थान, धनबाद

इन तीनों संस्थानों में पर्यावरण के विभिन्न क्षेत्रों में अनुसंधान कार्य होता है। बंगलौर के विज्ञान संस्थान में पश्चिमी घाटों, वायु तथा जल प्रदूषणों पर ध्यान दिया जाता है। अहमदाबाद केन्द्र विशेष समस्यों के निवारण में कार्य कर रहा है और तीसरा केन्द्र खनन पर्यावरण पर अनुसंधानरत है।

वन तथा सामाजिक वानिकी के क्षेत्र में अनुसंधान का मुख्य दायित्व भारतीय वन अनुसंधान और कॉलेज देहरादून तथा इसके क्षेत्रीय अनुसंधान केन्द्रों ने संभाल रखा है। वानिकी अनुसंधान और शिक्षा परिषद् का गठन किया गया है। इसके अतिरिक्त पाँच नए केन्द्रों की स्थापना की गई है। जो निम्न प्रकार से है-

1. शुष्क क्षेत्रीय वानिकी अनुसंधान संस्थान, जोधपुर
2. उत्तरी पर्वतीय पर्णपाती वन संस्थान, जबलपुर
3. उलटा-पूर्वी नम और दलदल वाले सदाबहार वन संस्थान, जोरहट
4. सूखी विज्ञान और प्रौद्योगिकी संस्थान, बंगलौर
5. वृक्ष जनन और आनुवंशिक संस्थान, कोयम्बटूर

उपरोक्त संस्थान राष्ट्रीय स्तर के वानिकी पर्यावरण शोध में सक्रिय भूमिका निभाते हैं। कुछ संस्थान देश के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में वन्य जीवन पर केन्द्रित है -

1.निवास स्थान क्रम विकास अनुसंधान।
2. हाथियों के गमनागमन पर शोध।
3. घड़ियाल और मगर की पारिस्थितिकी।
4. खतरे में पड़े पशुओं की स्थिति का अध्ययन।
5. पशुओं के व्यवहार का अध्ययन।
6. पशुओं का स्वास्थ्य एवं अन्य पारिस्थितिकी अवस्थाएँ।
7. शेर तथा चीते जैसे प्राणियों के अस्तित्व का अध्ययन।

इनके अलावा प्रदेश एवं जिला स्तर पर पर्यावरण एवं सामाजिक वानिकी के क्षेत्र में कार्य हो रहा है। जनता एवं वानिकी के क्षेत्र से जुड़े लोगों की अधिक से अधिक भागीदारी निश्चित करने हेतु भारत सरकार के पर्यावरण एवं वन मंत्रालय द्वारा वानिकी विकास की एक व्यापक योजना तैयार की गई है।

वानिकी में शोध अनुसंधान से सम्बन्धित ज्ञान व सूचना की जानकारी हेतु राष्ट्रीय पर्यावरण चेतना अभियान प्रारम्भ किया गया। वर्तमान में पर्यावरण चेतना जाग्रत करने हेतु प्रादेशिक स्तर पर पर्यावरण संगठन बन गये हैं। पर्यावरण अनुसंधान के क्षेत्र में भी सूचना संग्रहण के कार्य हो रहे हैं। पर्यावरण सजगता और प्रगति में सहायक बनने वाले नागरिकों के लिए केन्द्र सरकार द्वारा "पर्यावरण पुरस्कार" भी स्थापित किये गये हैं। जिनमें से कुछ निम्न प्रकार से है-

1. चैतन्मना चंद्र राष्ट्रीय पर्यावरण फैलोशिप, 1978
2. इन्दिरा गांधी पर्यावरण पुरस्कार, 1987

उपसंहार- हिन्दी साहित्य में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निबंध भी पर्यावरणीय समस्याओं को व्यक्त करने का सुन्दर माध्यम रहे हैं। उन्होंने न केवल पर्यावरण के अनुचित दोहन व प्रदूषण के विषय में लिखा, अपितु पर्यावरणीय क्षेत्रों के उचित उपयोग व संरक्षण के विषय में महत्वपूर्ण सुझाव व निर्देश भी दिये हैं। 'आम फिर बौरा गये' अशोक के फूल, मनुष्य का भविष्य आदि निबन्धों में रचनात्मक शक्ति, प्रदूषण तथा मनुष्य के आत्मकेन्द्रित दृष्टिकोण पर उनका चिन्तन दर्शनीय है। इस प्रकार के साहित्य को यदि पाठ्यक्रम में सम्मिलित कर विद्यार्थियों को अध्ययन कराया जाये तो निश्चय ही देश के भावी नागरिकों की दृष्टि को प्रकृति अनुगामी बनाकर पर्यावरण के संरक्षण की दिशा में हम प्रयास कर सकते है।

प्रकृति और जीवन में समन्वय बनाकर ही हम पर्यावरण को सुरक्षित रख सकते है। वन्य-जीवन और प्राकृतिक सम्पदा को बचाना ही मानव जीवन का संरक्षण होगा। बेकार भटकते युवाओं को पर्यावरण दूतों का गठन कर प्राकृतिक सौन्दर्य का संरक्षण और संवर्धन करने में सहभागी होना चाहिये। यदि ये भावी नागरिक पर्यावरण संरक्षण के प्रति सकारात्मक रुख दिखाये तो निश्चय ही इस समस्या से छुटकारा पाया जा सकता है। जब सरकार की यह जिम्मेदारी है कि वह राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक के हितों के लिए कार्य करे तो क्या नागरिकों की यह जिम्मेदारी नहीं होनी चाहिये कि अपने राष्ट्र के संरक्षण एवं संवर्धन के लिए उन्हें प्रयास करना चाहिये। क्योंकि देश के नागरिकों की सजगता व रचनात्मक सहभागिता ही इस समस्या का सटीक उपाय है। सर्वप्रथम जन वृद्धि पर अंकुश लगाने में नागरिकों को सहयोग करना चाहिये तत्पश्चात नागरिकों के सन्तुलित सहयोग के साथ ही अन्य असन्तुलन स्वतः ही सन्तुलित हो जायेंगे।

"उठो मेरे साथियों, उठो इस दूर तक फैली जमीन को
हरा करने का उपक्रम करें।
दिशाओं में फैले सपनों का समन्वय करना है, हमें सबके लिए।"

सन्दर्भ ग्रन्थ-

https://www.setumag.com/2020/05/Hindi-Literature-and-environmental-ed.html

सत्य और अहिंसा की अवधारणा में गांधी जी का वैचारिक अवदान
प्रो. अखिलेश्वर प्रसाद दुबे (शोध निर्देशक) एवं अभय कुमार (शोध छात्र) दर्शन विभाग, डॉ. हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय, सागर (म.प्र.) 47...

Setu, May 2020
Setu Volume 4; Issue 12; May 2020 Setu PDF Archives Editorial Sunil Sharma Anurag Sharma Poetry J. D. Nelson Louis ...

कविता के नये प्रतिमान और स्वातंत्र्योत्तर प्रमुख आंदोलन
- भारती शर्मा शोधार्थी, एम.फिल. (हिंदी), दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली "समूची नई कविता को ठीक-ठीक देखने के लिए नई कविता के प्रतिमान ...

'सरोज-स्मृति' शोक गीत में अभिव्यक्त करुणा
डॉ. कंचन गोयल - कंचन गोयल छायावाद आधुनिक हिन्दी कविता का स्वर्ण युग है। सूर्यकांत त्रिपाठी निराला हिन्दी साहित्य के एक ऐ...

Copyright Setu, Pittsburgh, PA, USA © सेतु सर्वाधिकार सुरक्षित. पिट्सबर्ग, पेंसिल्वेनिया (अमेरिका). Powered by Blogger.

1. पर्यावरण विज्ञान - डॉ. विजय कुमार त्रिपाठी, एस. चाँद एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली
2. पर्यावरण और हम - डॉ. डी. के. ठाकुर, पुस्तक संसार, जयपुर
3. पर्यावरण प्रदूषण: डॉ. एच. पी. बेहरा, हिमालय पब्लिशिंग हाउस
4. रामचरितमानस, किष्किन्धा काण्ड दोहा 11 चौपाई 2, गीता प्रेस गोरखपुर
5. बागवानी, बड़ा हमी, जयशंकर प्रसाद, प्रथम संस्करण 1995
6. जोश अखबार मासिक सहरकशिद अंक-9 जनवरी-मार्च 2003, सम्पादक - डॉ. सत्यप्रकाश सिंह, पृष्ठ - 60

सेतु, मई 2020

No comments :

Post a Comment

We welcome your comments related to the article and the topic being discussed. We expect the comments to be courteous, and respectful of the author and other commenters. Setu reserves the right to moderate, remove or reject comments that contain foul language, insult, hatred, personal information or indicate bad intention. The views expressed in comments reflect those of the commenter, not the official views of the Setu editorial board. अभिव्यक्ति स्वयं में सम्पादित सामग्री सम्पादक का स्वागत है।

Enter your comment...

Comment as: Google Accour

Publish Preview

Newer Post Home Older Post

Subscribe to: Post Comments (Atom)

Popular पसंदीदा

Setu Authors A-Z :: सेतु लेखक सूची
Browse Setu Authors by First Name A B C D E F G H I J K L M N O P Q R S T U V W X Y Z हिन्दी के रचनाकार व...

Introducing Setu
Dear readers, It's my pleasure to present debut issue of Setu Bilingual . A Sanskrit word, Setu means a bridge , and that is exactly...

Setu Awards सेतु सम्मान
Setu Awards for excellence for year 2018 Individual winner: Santosh Bakaya Institutional winner: The Cultural Centre of Vijayawada...

वर्तमान समय में समाजोपयोगी शिक्षा की आवश्यकता एवं प्रमुख चुनौतियाँ
विरेंद्र कुमार विरेंद्र कुमार सारांश प्रस्तुत शोध पत्र प्राथमिक स्तरों में समाजोपयोगी शिक्षा की वर्तमान समय में आवश्यकता एवं प्रमुख चुन...

मॉमबाटम का सफर
- एक ऐसा अनुभव जो सबके लिए अपनाना जरूरी है - सौम्यरत्न श्रीवास्तव (पुणे से मोबाइल) +91 789 873 4994 पढ़ाई के बाद प्लेसमेंट से अन्य राज्य ...

Setu, August 2020
Setu Volume 5: Issue 3, August 2020 Setu PDF Archives Editorial Sunil Sharma Poetry Gale Acuff J. D. Nelson Jimmy...